जीवन के सात सर्ग

बालमन से अध्यात्म तक
एक काव्यात्मक यात्रा

पेरी सूर्यनारायण मूर्ती

BlueRose ONE .com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Peri Suryanarayana Murty 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-6744-670-1

Cover Design: Deepak Katheria
Typesetting: Manisha Rawat

First Edition: October 2026

प्रस्तावना

मनुष्य का जीवन अनेक पड़ावों से होकर गुजरता है। बचपन की कल्पनाओं और परियों की दुनिया से आरंभ होकर वह प्रकृति की सुंदरता, समाज की विडंबनाओं, रिश्तों की ऊष्मा और पीड़ा, जीवन के प्रश्नों, कला और संस्कृति की संवेदना तथा अंततः अध्यात्म और आत्मचिंतन की ओर बढ़ता है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह इसी आंतरिक यात्रा को शब्द देने का एक विनम्र प्रयास है।

"जीवन के सात सर्ग — बालमन से अध्यात्म तक एक काव्यात्मक यात्रा" शीर्षक अपने आप में इस संग्रह की भाव-यात्रा का संकेत देता है। आरंभिक कविताओं में बालमन की निश्छलता, कौतूहल और कल्पनाशीलता दिखाई देती है। प्रकृति संबंधी कविताएँ अपने रंग, रूप और स्मृतियों के माध्यम से मनुष्य और प्रकृति के सहज संबंध को अभिव्यक्त करती हैं।

सामाजिक जीवन से जुड़ी रचनाओं में कहीं पीड़ा है, कहीं प्रश्न, कहीं व्यवस्था के प्रति असहमति और कहीं मनुष्य के प्रति करुणा। एक लेखक, वृद्ध, श्रमिक, उपेक्षित और साधारण मनुष्य—इन सबके जीवन-स्पंदन को इन कविताओं में स्थान मिला है।

जीवन-दर्शन से संबंधित कविताओं में जीवन की मधुर स्मृति , प्रेम, अकेलापन, रिश्ते, आशा, आत्मसंघर्ष और मनुष्य की अंत:यात्रा जैसे विषय उभरते हैं। इसके बाद कला, संस्कृति और शब्द-शिल्प से जुड़ी रचनाएँ साहित्य, चित्रकला, शब्द और रचनात्मकता के प्रति लेखक के अनुराग को सामने लाती हैं।

इस संग्रह का आध्यात्मिक और पौराणिक पक्ष भारतीय सांस्कृतिक चेतना से जुड़ता है। गंगा का माहात्म्य , भक्ति, सख्य तथा दास्य भाव , तथा महाभारत के पात्रों के माध्यम से लेखक एवं ने केवल अतीत को दोहराने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि उन प्रसंगों में छिपे मानवीय प्रश्नों और भावनाओं को वर्तमान संवेदना से जोड़ने का प्रयास किया है। कर्ण, अभिमन्यु, कुंती, युधिष्ठिर और अश्वत्थामा जैसे पात्र यहाँ केवल पौराणिक चरित्र नहीं रह जाते;

वे मनुष्य के भीतर चलने वाले द्वंद्व, पीड़ा, अन्याय, कर्तव्य और नियति के प्रतीक बन उठते हैं।

इस संग्रह की एक विशेषता यह भी है कि इसमें कवि ने विषयों की एकरूपता के बजाय अनुभवों की विविधता को स्थान दिया है। कहीं बालमन की सरलता है तो कहीं प्रकृति का सौंदर्य, कहीं सामाजिक यथार्थ की कसक, कहीं निजी स्मृति की नमी और कहीं भारतीय महाकाव्य परंपरा से संवाद है । इस प्रकार यह संग्रह जीवन के अनेक रंगों को एक साथ समेटने का प्रयास है।

कवि का साहित्यिक संस्कार हिंदी के उन रचनाकारों से निर्मित हुआ है, जिन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन ही नहीं, बल्कि जीवन और समाज से संवाद का माध्यम माना है । प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि, कविवर पंत की प्रकृति-संवेदना, निराला जी की मानवीय संवेदना ,करुणा और विद्रोही चेतना तथा ' दिनकरजी 'की ओजस्विता और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव लेखक की साहित्यिक रुचि में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

यह संग्रह किसी एक निश्चित काव्य-धारा या शिल्प में स्वयं को बाँधने का प्रयास नहीं है । इसकी कविताएँ अपने-अपने अनुभव और भावभूमि के साथ पाठक के सामने आती हैं। कहीं सरलता इसकी शक्ति है, कहीं भावुकता, कहीं प्रश्नाकुलता और कहीं कल्पना। यही तो थेविविधता इस काव्य-यात्रा को अपना विशिष्ट स्वर देती है।

आशा है, पाठक इन कविताओं में केवल कवि के शब्द नहीं, बल्कि अपने जीवन की कुछ स्मृतियाँ, कुछ प्रश्न, कुछ संबंध और कुछ अनकहे भाव भी खोज पाएँगे।

कविता अंततः कवि और पाठक के बीच एक मौन संवाद है। प्रस्तुत संग्रह उसी संवाद की एक विनम्र पहल है।

— लेखक

आभार

कविता मेरे लिए केवल शब्दों की सजावट नहीं, बल्कि जीवन को देखने, समझने और अनुभव करने का एक माध्यम रही है। बचपन के निश्छल संसार से लेकर प्रकृति की अनुपम छटा, सामाजिक सरोकारों, जीवन के विविध अनुभवों, कला और संस्कृति, अध्यात्म तथा पौराणिक आख्यानों तक की यह काव्य-यात्रा मेरे भीतर लंबे समय से संचित भावों की अभिव्यक्ति है।

इस काव्य-संग्रह के प्रकाशन के अवसर पर मैं उन सभी व्यक्तियों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरी साहित्यिक यात्रा को प्रोत्साहन दिया। परिवार के सदस्यों, मित्रों और शुभचिंतकों का स्नेह एवं उत्साह मेरे लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत रहा है।

मैं अपने उन सभी साहित्यकारों के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी रचनाओं ने मेरे मन और संवेदना को गहराई से प्रभावित किया। विशेष रूप से मुंशी प्रेमचंद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और रामधारी सिंह 'दिनकर' के साहित्य से मुझे जीवन, समाज, प्रकृति और मनुष्य को देखने की नई दृष्टि मिली। उनके साहित्य का प्रभाव मेरी संवेदनाओं और लेखन-यात्रा में कहीं न कहीं अवश्य उपस्थित है।

सेवानिवृत्ति के पश्चात हिंदी साहित्य के प्रति अपने पुराने अनुराग को अधिक समय और समर्पण देने का अवसर मिला। उसी साधना का यह संग्रह एक विनम्र परिणाम है।

अंततः मैं अपने पाठकों के प्रति भी आभारी हूँ। रचनाकार की सच्ची उपलब्धि तभी है, जब उसके शब्द पाठक के हृदय तक पहुँचें और वहाँ कोई अनुभूति, प्रश्न, स्मृति या विचार जगा सकें।

यह संग्रह मैंने अपने पाठकों को सादर समर्पित किया है। इसकी सफलताएँ मेरी नहीं बल्कि उन सभी की हैं जिन्होंने मुझे इस किताब को लिखने को

प्रेरित किया है ।साथ ही इसमें जो भी कमियाँ और त्रुटियां हैं वे मेरी ही हैं, जिसके लिए विज्ञ पाठक क्षमा करेंगे।

— पेरी सूर्यनारायण मूर्ती

अनुक्रमणिका

प्रथम सर्ग - बाल कवितायें 1
1. परियों के देश में.....3
2. बच्चों की तोतली बोली.....5
3. आंखमिचौनी.....8
4. मासूम.....10
5. परीकथा.....12
6. लूडो का खेल.....14
7. पतंग.....16
8. लंबे बालों वाली परी.....18
9. रहने दो मुझे सदा ही बच्चा.....20
10. उड़नखटोला.....22

द्वितीय सर्ग - प्रकृति चित्रण 25
11. पुष्प की अभिलाषा.....27
12. ये हसीं वादियां.....29
13. टूटा हुआ तारा.....31
14. समंदर की गहराईयों में.....33
15. वो हसीं यादें.....35
16. प्रकृति न्यारी -सी.....37
17. सुमेरु ज्योति की छटा.....39

तृतीय सर्ग - सामाजिक कवितायें 41
18. रेल का सफर.....43
19. गरीब की दाल रोटी.....45
20. एक श्वान की अंतर्व्यथा.....47
21. अश्वमुख से युद्ध-वर्णन.....49
22. लेखक का जीवन.....52
23. व्यथा एक लेखक की.....54

24. वह तोड़ती पत्थर वैसे ही 56
25. वह पुरानी खिड़की 58
26. नरपिशाच का सफर 60
27. मत छोड़ो कभी वृद्धाश्रम में 62
28. एक सड़क की आत्मकथा 65
चतुर्थ सर्ग - जीवन -दर्शन 67
29. बूढ़ी आँखें 69
30. दादाजी का चश्मा 71
31. चल वहां जाते हैं 73
32. प्रेम संदेश 75
33. मन का आईना 77
34. बालक - सा चेहरा 79
35. मेरी परछाई 81
36. सौतेला भाई 83
37. मानव एक पुतला 85
38. भारत की नारी 87
39. वह बंद खिड़की 90
40. सात समंदर पार की दुनिया 92
41. वह मरफी रेडियो 94
42. किताब से बात 96
43. संजीवनी 98
44. सांवली लड़की 100
45. वायुयान से सैर 102
46. जीवन-संध्या 105
47. प्रभु दर्शन 107
48. ईसा का आखिरी रात्रिभोज 110
49. रुकने का मतलब नहीं 112
50. दादी की यात्रा 114
51. बागवान 116
52. अर्धसत्य 118

पंचम सर्ग - कला ,संस्कृति और शब्द-शिल्प.....121
53. करुणा.....123
54. अनोखी चित्रकारी.....125
55. पुस्तकालय में प्रेम.....127
56. गांधर्व और राक्षस विवाह.....129
57. अगर शब्दों के पंख होते.....131
58. आखिरी दिन था वह महाभारत का.....133
59. एक लेखक का सपना.....136
60. हे राम! हमें 'दिनकर' लौटा दो!.....138
61. कौन सुने कवि का क्रंदन !.....140
62. वो मुझे छोड़ कर चली गई.....143
63. कैकेयी का अंतर्द्वंद्व.....145
षष्ठम सर्ग - आध्यात्म और पौराणिक गाथायें.....149
64. त्रिपथगामिनी हे गंगे !.....151
65. नमामि गंगे.....153
66. हम साथ साथ हैं !.....156
67. क्या तुम मेरे सखा बनोगे?.....158
68. गुमनाम भक्त.....160
69. फूलों की सुगंध.....162
70. मृत्युंजय.....164
सप्तम सर्ग - आत्मबोध - महाभारत खंड.....167
71. वह अभिमन्यु है आज कहां?.....169
72. कुंती -कर्ण संवाद.....175
73. अगर कर्ण शापित नहीं होता!.....179
74. प्रतिशोध की वह रात.....181
75. धर्मराज का स्वर्गारोहण.....183
76. स्वर्गलोक में युधिष्ठिर का स्वागत.....189

प्रथम सर्ग
बाल कवितायें

1.
परियों के देश में

बचपन में एक दिन मैं नानी से पूछा,
परियों की कहानी तुम सुनाती मुझे।
बताओ मुझे क्या मैं भी जा सकता ?
उस राजकुमार -सा परियों के देश में !

हाँ ,हाँ , तुम भी जा सकते मेरे मुन्ने,
कागज के पंख लगा ,जादुई छड़ी ले!
परियों की राजकुमारी आकर सपने में,
ले जायेगी तुझको परियों के देश में!

कुछ बड़ा हुआ तो मैं नानी से पूछा,
क्यों अपने परियों से पंख नहीं होते?
क्यों नहीं है जादुई छड़ी उन जैसा,
क्यों हम उन जैसे उड़ नहीं पाते?

नानी परियों का देश कैसा होता ?
होते वहाँ क्या लोग हमारे जैसे?
होता कोई दुबला तो कोई मोटा,
या सब सुंदर इक जैसे ही होते?

वहाँ भी लोग क्या हम जैसे होते,
क्या हम जैसे ही खाते और पीते ?
हम जैसे ही वे क्या लड़ते झगड़ते,
और हम जैसे क्या बीमार भी पड़ते?

ठिठकी नानी इक क्षण ,फिर बोली,
हम जैसे नहीं होते परियों के देश में!
उनमें स्वार्थ और लोभ होता ही नहीं ,
इसलिए वे होते हल्के ,उनके पंख होते!

जादुई छड़ी से सब कुछ वे पाते,
पर लोभ छोड़ वे सबका हित करते!
इसीलिए वे बड़े सुंदर होते,
हम जैसे दुबले या मोटे नहीं होते!

हम जैसे वे नहीं हैं होते,
ना ही वे कुछ खाते या पीते !
चिंता भूख सताती नहीं उन्हें ,
लड़ते नहीं वे ,बीमार नहीं पड़ते!

मैं बोला नानी गलती सब है हममें,
हम सब कुछ अपने की ही सोचते!
काश! मनुष्य नहीं होता मैं जग में,
होकर परी रहता , परियों के देश में।।

—------

2.
बच्चों की तोतली बोली

वो मेरे छोटे नन्हें बच्चे,
तुतलाते जब बोला करते ।
कानों में वे शहद घोलते,
लगे कि हम संगीत सुन रहे ।।

सबसे छोटा मेरा बेटा ,
तुतलाते ही बोला करता।
बहनें दो उसकी जरा बड़ी सी,
तुतलाते ही मचाती हल्ला ।।

छोटू जब अम्ब अम्ब कहता।
अद्भुत वह दृश्य याद आता।
" यशोधरा " के राहुल जैसा ,
माता से प्रश्न वह दुहराता ।।

तुतला कर जब बेटा पूछे,
अम्म -अम्म बाबा कब आयेंगे?
लगता प्रश्न मां से राहुल का,
" अम्ब तात कब आयेंगे ? "

नन्हीं रोती हुई आ कहती,
मेला घोला भाई ने ले ली ।
मुन्नी तुतलाती- सी बोलती,
घोला दे दे नई तो मालूँगी।।

कभी पलंग के नीचे मेरे,
गुड्डों का शहर बसा देते !
कभी ब्याह ,तो कभी रसोई,
धूमधाम से होती रहती !

होती हलचल जोर शोर से,
ठीक पलंग के नीचे मेरे ।
बसी बसाई नगरी दिखती,
मेरी नींद उड़ा ले जाती !

शामियाना बनता चादर से,
झालर बनती मां की साड़ी से!
चखने पड़ते तब मुझको ही ,
वो मीठे पकवान सभी ही ।।

आज मेले गुड्डे की तादी ,
हो लही बहना की गुड्डी ते ।
मां औल आप जलूल आना,
न्योता दे जाते बच्चे वे ।।

न्योता पाकर झूम उठता मैं,
गुड्डा गुड्डी के शुभ परिणय का ।
होकर शामिल गुड्डों की ब्याह में ।
मैं भी बारात में नाच उठता ।।

कभी पीठ पर चढ़कर मेरे ,
तल मेले घोले कहते वे ।
दूध मलाई तुझको देंगें,
जल्दी तल कह कान खींचते ।।

कितनी मोहक-सी है होती ,
वह बच्चों की तोतली बोली।
कितनी भावपूर्ण वह होती,
जग ही उस पर वारी जाती।।

—------

3.
आंखमिचौनी

याद आती मैं खेला करता ,
लुकाछिपी अपनी माँ से।
छुप जाता किवाड़ के पीछे,
या छुपता मैं पलंग के नीचे।।

खिलखिला कर मैं हँस पड़ता,
जब वह ढूँढ नहीं पाती !
आकर उसके गले मैं लगता,
अंक में ले वह मुझे पुचकारती ।।

मुझको दिखाती नभ में चंदा,
उसे देख मैं खुश हो जाता ।
पर वह आंखमिचौनी करता,
बादलों के पीछे छुप जाता।।

कभी माँ उपवास जो रखती,
देख चांद वह भोजन करती ।
बाट जोहता फिर मैं उसका,
बादलों के ओट वह छुपता ।।

लुकाछिपी का यह है खेला,
चलता रहता है यहां सदा ।
बाल राम रिझाये कौशल्या,
कृष्ण रिझाये यशोदा मैया ।।

कभी धूप तो कभी है छाया,
लुकाछिपी है जीवन का खेला।
सुखदुख की आँखमिचौनी में,
चलता यह जीवन का मेला।

—------

4.
मासूम

कितने मासूम होते बच्चे,
छल-कपट होता नहीं उनमें।
होते हैं वे मन के सच्चे,
भगवान का ही रुप वे होते।।

मैं भी था इक मासूम बच्चा ,
निर्मल और निष्कपट मन मेरा।
प्रेम और शांति से भरा था,
मेरा जग वह कितना सुंदर था !

होकर बड़ा जगत जब देखा,
कितने जंजालों से है वह भरा।
नहीं शांति , प्रेम का ठिकाना ,
तांडव है यहाँ ईर्ष्या द्वेष का ।।

होकर बड़ा यही मैं चाहा,
रहूं भोला एक बच्चे जैसा।
जग ने इसको कमजोरी माना,
कहते यह है अनाड़ी कैसा !

मासूमियत बचपन में जहाँ,
दुनियां को प्यारी है लगती ।
बड़े होकर निर्मल मन रखना,
जगत को मूर्खता ही लगती !

जग चाहे प्रभु कुछ भी कह ले,
बच्चे जैसा ही मुझे रखना ।
चाह नहीं चतुरता की मुझे,
मासूम बच्चा-सा ही रखना !

—------

5.
परीकथा

एक रात मैं सपना देखा,
सपनों में आई एक परी!
बोली,"सुनाओ वह परीकथा,
जो तुम्हें नानी है सुनाती "।।

होकर स्तब्ध मैं देखता रहा,
देख परी को चकित हो गया!
हकलाता मैं उससे बोला,
" परी को सुनाऊं, परीकथा ?"

" नानी से तुम सुनते आये,
कितनी ही परीकथाएं हैं ।
अब तुम मुझे भी एक सुना दे,
कैसी होती वे परियां हैं ? "

मैं कहा -"परियां सुंदर होती,
सुनहरे से पंख होते उनके ।
हाथ में रहता जादुई छड़ी,
करती वह कारनामे अनोखे!"

मैं बोला -"एक रात ले चली,
पंखवाले घोड़े पर वह मुझको।
चांद सितारों के पार कहीं,
सैर कराने परीलोक की !"

सुन कहानी परी फिर बोली,
क्या सच में होती है परियाँ?
मैं तपाक से उससे बोला,
"हाँ ,निश्चित होती हैं परियाँ!"

फिर यूँ मैंने बोला उससे,
" नन्हें बच्चे ही होते परियाँ।
रूप और मन मोहक उनके,
बातें उनके जादू करते " ।।

खुशी से वह चहकती बोली,
" सच,ऐसी ही होती परियाँ!"
इतना कह वह अदृश्य हो गई,
सुखद एक अनुभूति दे गई।।

—------

6.
लूडो का खेल

लूडो कहते ही आ जाती,
याद उन सुनहरे दिनों का।
जब तीनों बच्चे बैठ जाते,
खेलने वह खेल लूडो का ।।

तीनों जब खेलने बैठते,
एक स्थान खाली रह जाता।
तब मुझको खेलने बुलाते,
छोड़ काम सब तब मैं जाता।।

जब वे गोटी मारते मेरी,
खुशियों से फूले न समाते।
जब आती थी मेरी बारी,
मिन्नतें मुझसे करने लगते।।

जब मेरी गोटी के आगे,
उनमें से दो की गोटी होती।
बोलते मारने मुझसे वे ,
एक दूसरे की ही गोटी !

जब मैं खेल जीतने लगता,
उनमें एक को हारना ही पड़ता!
कोई यदि उनमें से हारा,
तो मुझे बेईमान वह कहता !

मैं लूडो में कभी न जीता,
जानबूझकर उनसे हारा!
खुशी भरे चेहरे बच्चों के ,
देख खुशी से मैं झूम उठता !

—------

7.
पतंग

उड़ती नील गगन में ऊँची,
वह पतंग डोर पर सवार हो ।
उन्मुक्त वह एक सुंदर परी- सी,
सुन्दरता की मूरत हो ज्यों !

उड़नखटोला -सी वह उड़ती,
नागिन- सी फुफकारती कभी!
कभी -कभी हिचकोले खाती ,
कभी शांत हो वह लहराती !

सुंदर -सी रंगों से सजती,
रूप अनेक वह धरती।
किसी अप्सरा की अलकाओं-सी,
दूर कहीं नभ में लहराती !

काट के बंधन जग के सारे,
नील गगन में खो जाती!
बच्चों को ललचाती रहती,
कभी दूर कभी पास वह होती!

कभी विरोधी पतंग दिखे तो,
शूरवीर- सा आगे बढ़ती।
खड्ग- सा ले अपनी डोर को ,
तुरंत चढ़ाई उस पर करती ।।

लहराती उस पतंग के पीछे,
बच्चों की टोली जुट जाती ।
कभी कहीं पतंग कट जाये,
निगाहें उसी पर जमी रहती।।

कभी विजय अट्टहास वह करती ,
हारी अगर तो सिर ही कट जाती !
कटी पतंग के पीछे दौड़ते बच्चे,
पाकर उसे फूले न समाते!

—------

8.
लंबे बालों वाली परी

लगती है वह सुंदर परी-सी,
मोहक उसकी हँसी लुभाती।
इठलाती बलखाती चलती,
बिटिया लंबे बालों वाली।।

चंचल -सी जब हरकतें करती,
रंगबिरंगी तितली वह लगती।
सुंदर लटें माथे पर जब गिरती,
शोभा उसकी दूनी हो जाती ।।

माँ जब बालों को संवारती,
थोड़ी-सी वह है झुंझलाती।
कई बहाने वह है करती,
हाथ नहीं वह माँ के आती।।
दो दो
आकर पास जब मुझे कहती,
सुनाओ कहानी परियों की।
उसे सुनाता किस्सा सिंड्रेला की,
और रपुन्जेल के लंबे बालों की।।

सुन कहानी वह मुझसे पूछती,
क्या सचमुच ही परियां होती?
सच ही बाल हैं होते ऐसे भी ,
रपुन्जेल के जैसे उतने लंबे ही?

कहता मैं सच में परियाँ होतीं,
तुम जैसी ही वे सुंदर होती!
रपुन्जेल है परी बिल्कुल तुम जैसी,
सुनहरी लंबे बालोंवाली इक परी !

माँ के पास तब जाकर कहती,
बाल संवारो माँ, तुम बिल्कुल वैसी।
सुंदर दिखूं मैं भी रपुन्जेल जैसी,
लगूं परी मैं लंबे बालोंवाली ।।

माँ उसकी तब खुश हो जाती,
झटपट उसके बाल सँवारती।
माथा चूम खुशी से वह कहती,
तुम परी हो लंबे बालोंवाली।।

शब्दार्थ-

१) सिंड्रेला-अंग्रेजी परी कथाओं में छोटी लड़की।
२) रपुन्जेल-अंग्रेजी परी कथाओं में एक लड़की जिसके काफी लंबे बाल हैं।

—------

9.
रहने दो मुझे सदा ही बच्चा

बचपन कितना प्यारा होता,
कितना सुंदर और भोला- सा !
नहीं यहाँ कोई अभिलाषा,
ना कोई चिंता या कोई निराशा !

खेलकूद में ही दिन बीते,
खेलें कभी ,कभी हम झगड़ें।
ईर्ष्या और क्रोध कभी न होता,
खेल के अलग हम कुछ न सोचें।।

कभी तरु की छांव में खेलें,
कभी रेत में महल बनायें !
कभी पेड़ पर हम चढ़ जायें,
कभी हिरण-सी भरें कुलांचें !

कभी हम ऐसे दौड़ लगाते,
कभी हवा से बातें करते !
कभी बादलों की ओट में ,
इन्द्रधनुष हम देखा करते !

सांझ ढले तो घर हम लौटें,
खाना माँ के हाथ से खायें!
दिन भर की थकान मिटायें,
मीठे सपनों में हम खो जायें !

बचपन है कितना ही प्यारा,
कितना सुंदर कितना न्यारा !
कितना अच्छा,कितना सच्चा,
रहने दो मुझे सदा ही बच्चा !

—------

10.
उड़नखटोला

उड़नखटोला कितना न्यारा ,
रूप अनेकों होते इसके!
दूर-दूर तक सैर कराता,
नाम भी होते हैं कई इसके !

पुष्पक, त्रिपुर,शकुन और सुंदर ,
चार विमान पुराणों में वर्णित थे!
रॉकेट, विमान,अंतरिक्ष-यान,
और हेलीकॉप्टर कहलाते आज वे !

किस्से मैंने सुने थे बचपन में,
नभ में देवतागण विचरा करते!
चित्र- विचित्र विमानों में बैठे,
लोकालोक में हैं वे विचरते!

नारद हुए त्रिलोक-संचारी,
संकल्प मात्र से विचरण करते!
सनक-सनंदनादि मुनिगण भी,
बिना खटोले सब लोक में जाते!

उड़नखटोले के सफर में,
परग्रहवासी भी कम हैं नहीं!
उड़नतश्तरी लेकर वे आते ,
इस धरती पर भी कभी-कभी!

मानव ने भी बना डाला कितने ,
वायुयान और व्योमयान भी!
अंतरिक्ष में भेज रहा वह अपने,
सौरमंडल के सुदूर ग्रहों पर भी !

—------

द्वितीय सर्ग
प्रकृति चित्रण

11.
पुष्प की अभिलाषा

पुष्प हूं मैं इक छोटा -सा
तोड़ो मत मुझको वनमाली!
मेरी है एक ही अभिलाषा,
रहने दो तुम मुझको ऐसा ही !

आंखे खोल खुद को मैं पाया ,
निज माता के कोमल अंक में !
चूमकर अपने ओठों से सदा,
हमें झुलाती वह निज बाँहों में !

माँ अपने कोमल हाथों से,
छूकर हमें सदा गर्वित होती!
पाकर सुगंध मेरे मृदु गात की,
सम्मोहित -सी वह हो जाती!

माता के मुख को निहारता,
मैं भी फूला नहीं समाता हूं!
जीकर जीवन एक दिवस का,
माँ के चरणों में झड़ जाता हूं !

तोड़ो न मुझको वनमाली,
गर्दन मेरी तुम न मरोड़ो !
सुई से बिंधित न करो देह मेरी,
हार बनाने यह प्राण न लो !

इत्र बनाने तप्त तेल में ,
उबाल मुझे यातना न दो !
मानव देह पर गंध लेपने,
इस कोमल देह को मत मारो !

क्या तृप्त होंगे देव भी कभी,
रक्त सिंचित इन फूलों से ?
होंगे न क्या तृप्त वे कहीं,
मानव के ही हृदय -कुसुम से ?

मातृ अंक से हमें अलग न करो,
जीवन मेरा है इक छोटा- सा!
माता के ही अंक में रहने दो,
यही है इस पुष्प की अभिलाषा !

—------

12.
ये हसीं वादियां

ये हसीं वादियां देखूं मैं,
ये खुला आसमां देखूं मैं!
ये हसीं फ़िज़ायें देखूं मैं,
हसीं हवाओं संग झूमूं मैं !

सुबह की किरणों की लाली,
हर तरफ नया रंग है लाती !
शाम को बहती हवायें सुहानी,
खुशबुओं को बिखेर कर जाती !

ये ऊंची ऊँची पहाड़ियाँ,
उन पर फैली बर्फ चादर-सी।
नीचे फैली हसीं वादियां,
लगती फूलों के गुलशन- सी !

शोभा देखो हसीं वादियों की ,
चीड़, चिनार ,और देवदार की!
आलूबुखारे,सेव और नासपाती ,
अखरोट ,बादाम जैसी पेड़ों की !

हसीं है सब इन वादियों में,
गुल ,गुलशन गुलफ़ाम हैं हसीं!
नदी , झील और शिकारे भी,
हैं कितने हसीं यहां के लोग भी!

जन्नत है जमीं यह कश्मीर की,
हसीं हैं वादियां ,सब कुछ है हसीं।
देखा वादियां इतनी सी हसीं,
हो गया निहाल देख इसकी शोख़ी ।।

—------

13.
टूटा हुआ तारा

टूटते जो तारे व्योम में ,
नहीं विनष्ट वे हैं हो जाते!
टूट कर वे नक्षत्र पिंड फिर से,
नव रूप और आकार पा जाते !

जब कभी तारे हैं टूटते,
नवनिर्माण सदा वे करते!
सहस्त्रों शिलाखंड होकर जब वे,
महाकाश के सुदूर पथ पर बढ़ते!

पाषाण -खंड जो समीप रह जाते,
मातृ -तारिका के वे ग्रह बन जाते!
उस तारा की सदा परिक्रमा करते,
निर्धारित अपनी -अपनी कक्षा में !

कुछ ऐसे भी पाषाणखंड होते,
जो सुदूर पथ पर हैं चल पड़ते!
महाकाश में विषम स्थिति में,
जलकर वे भस्म हो जाते!

पर जलकर भी हमें दे जाते ,
धातु औ' वायु तत्व अनेक वे!
होकर भस्म स्वयं, जग को वे,
नव सृष्टि का उपहार हैं देते !

टूटा हुआ तारा निकलता,
महाकार्य पर महाकाश में!
सृष्टि का गूढ़ रहस्य वह होता,
नहीं नष्ट वह कभी है होता !

धरा यह अपनी भी कभी थी,
अंश एक उस प्रचंड मार्तण्ड का !
टूटा जलता - सा वह एक टुकड़ा ,
आज बना निवास सब मनुजों का !

टूटा हुआ तारा व्योम का,
नहीं है कभी नाशवान- सा!
स्वयं टूटकर सृजन वह करता,
नव सृष्टि का आधार वह होता !

—------

14.
समंदर की गहराईयों में

छिपे हुए रहे राज कितने ,
इस समंदर की गहराइयों में।
अनादिकाल से संजोये हुए हैं ,
अनगिनत रहस्य अपने गर्भ में ।।

हैं अमूल्य रत्न गर्भ में इसके,
जीव- जंतु अनोखे कितने ही !
पर्वत ,गुफा ,औ' जलधाराएं ,
बड़वानल औ' ज्वालामुखी भी !

हैं सागर वर्णित पुराणों में,
लवण,इक्षुरस,घृत व सुरा के !
दधि ,क्षीर और मीठे जल के,
सप्त समुद्र इस सृष्टि में होते!

सुना होते समुद्र के अंतर में ही ,
नागलोक और पाताललोक भी!
यहाँ नाग,जलपरियां भी होंती ,
मिलते वहां गज और घोटक भी!

वह रहस्य बरमूडा त्रिभुज का,
कोई अब तक न समझ पाया !
रहस्य गूढ़ क्या लुप्त होने का,
उन जहाजों और विमानों का !

स्वर्ग सरीखा नगर द्वारका,
समंदर के तल में है डूबा !
महाकाय टाइटानिक यहां ,
आकर चिर समाधि में लेटा !

कितने नगर ,कितनी सभ्यताएं,
हुए विलुप्त इस सागर तल में!
कितने ही जहाज हैं डूब गये,
ले अकूत धनराशि अतल में!

है अमूल्य भंडार निक्षिप्त यहाँ,
मोती, शंख, मणि ,माणिक, मूंगे!
असंख्य जीव और लोक हैं यहाँ,
इन समंदर की गहराईयों में !

—------

15.
वो हसीं यादें

अब भी ताजी हैं वो हसीं यादें ,
परिवार को सैर करायी जब हमने।
कश्मीर की वो हिमाच्छादित शिखरें,
और हसीं वादियां भी देखी हमने ।।

हाउसबोट में रहते थे हम सभी ,
डल झील में भरते थे किलकारी!
जलपरी - सी इतराती बलखाती ,
शिकारे की चाल मुग्ध हमें करती!

वो शालीमार बाग के नजारे,
चश्माशाही की वह झाँकी!
बेताब वैली की झलक जो देखी,
मन में हुई सचमुच बेताबी !

गुलमर्ग की वो बर्फीली जमीं,
गुलशन में गुल कई थे खिले!
इस जहां मे चाहत कुछ नहीं,
मन चाहे बस सदा यहीं रहें !

कश्मीर की हर बालिश्त जमीं,
कुदरत की करिश्मे से है भरी!
ठीक ही कहा किसी ने कभी,
धरती पर तो स्वर्ग है यहीं !

वो हसीं यादें बसे हैं दिलों में,
वो पांच दिन कश्मीर के हमारे!
कोई कश्मीर की जब बात करे,
ताजी हो जाती हमारी यादें !

—------

16.
प्रकृति न्यारी -सी

प्रकृति एक वरदान अनोखा,
विधाता ने जग को जो दिया।
नभ जल थल में यह दीखता ,
रूप अनेक ही इसने है धरा ।।

है यह पर्वत सागर अरण्य में,
ग्रह नक्षत्र और महाकाश में!
व्याप्त है सृष्टि के कण-कण में,
फैली प्रकृति विविध रूपों में!

मानव ने पग पग पर सीखा,
प्रकृति से शिक्षा वह पाया !
पेड़ से गिरते फल को जो देखा,
न्यूटन खोजा सिद्धांत आकर्षण का !

नभ में देख बादल को विचरते,
प्रेरित कालिदास ने काव्य रची!
"मेघदूत "उस कवि की वाणी से ,
प्रेम काव्य बन प्रस्फुटित हुई !

बादल का विन्यास जो देखा,
रूप अनोखे देखा जो उसका !
कविवर "पंत" ने तब लिख डाला ,
" बादल" की वह अद्‌भुत कविता !

खिले देख अगणित वन्य फूलों को ,
'वर्ड्सवर्थ' ने 'डैफोडिल्स' रच दी!
देखा नदी पर सुंदर सेतु शोभित तो ,
'द वेस्ट्मिन्स्टर ब्रिज ' कविता लिख दी!

मधुर गूँज पंछी की सुनी तो,
'कीट्स ' ने 'नाइटिंगेल' रच दी!
बहती मंद पवन से मुग्ध हो,
'शेली' ने 'ओड् टू द वेस्ट विंड ' रच दी !

प्रकृति एक वरदान अनोखा,
नदी, वन, पर्वत रूप हैं इसके!
अन्न, जल, खनिज देती यह कितना,
हों कृतज्ञ हम इनका संरक्षण करके!

करो न दोहन इस प्रकृति का,
संरक्षण इसका करो सदा ही!
दोहन यदि हो अविरल इसका,
फल विपरीत होगी प्रकृति की !

—------

17.
सुमेरु ज्योति की छटा

कुदरत का करिश्मा इसे कहो ,
या कहो प्यार यह प्रकृति का!
बाँटा प्यार उसने हम सबको,
रंगबिरंगी सौगात दे सदा !

धरती का यह उत्तरी ध्रुव कैसे ,
अगणित कठिनाइयों से है भरा!
होते हैं यहां दिन छह महीने के,
बाकी अंधेरी रातें होती है यहां !

बिन सूरज का मुखड़ा देखे,
कैसे रहें ये उत्तर ध्रुववासी ?
दिया इसलिए ही कुदरत ने,
सुमेरु ज्योति की छटा ऐसी !

हरी लाल रंग छटा बिखेरे,
रंगीन पर्दा - सी वह दीखती!
कभी रंगीन पट्टियों- सी दिखे,
कभी नृत्य वह करती रहती!

एक ओर चंदा रहे नभ में ,
एक ओर सुमेरु ज्योति दिखे।
चंदा के सम्मुख नृत्य वह करे,
रंगबिरंगी छटायें वह बिखेरे !

सप्ताश्व युत रथ पर सवार हो,
सूर्यदेव जग को हैं चमकाते!
भूमध्य में वे इन्द्रचाप दिखाते,
सुमेरु ज्योति दिखाते उत्तर ध्रुव में!

(विशेष नोट - इस कविता में 'सुमेरु ज्योति 'का अर्थ उत्तरी ध्रुव पर दिखनेवाली दिव्य रोशनी ' ऑरोरा बोरियालिस ' या 'नॉर्दर्न लाइट्स ' है।)

—------

तृतीय सर्ग
सामाजिक कवितायें

18.
रेल का सफर

रेल का यह सफर है होता,
कितना सुखद और सुहाना!
बस इतना जरूर है होना,
सही स्थान तुमको है पाना !

यहां स्वर्ग है ,यहीं नरक है,
पैसों का है खेल निराला !
कहीं स्वर्ग -सा सुख पसरा है,
कहीं नरक - सा ठेलमठेला !

प्रथम द्वितीय या तृतीय होती,
श्रेणी यात्रियों के इस सफर की।
जितने पैसे तुम खर्च करोगे ,
सुविधा पाओगे तुम वैसी ही ।।

प्रथम श्रेणी की शान निराली ,
बैठो या लेटो तुम शान से !
वहीं अगर द्वितीय हो श्रेणी ,
समझौता तुम करना सीख ले !

श्रेणी अगर तृतीय हुई तो,
भरोसा निज बल पर रखना!
स्थान दूजा ग्रहण कर ले तो,
बाहुबल से फिर आगे बढ़ना !

कितने लोग , कितने चेहरे,
सबकी अलग कहानी होती !
कुछ के सफर यादों में रह जाते,
कुछ को सफर की याद डराती !

कैसा यह भेदभाव है होता,
इस पैसे ने सबको है बांटा !
कमजोरी , गरीबी या बुढ़ापा ,
यहां किसी के काम न आता !

सबको रेल साथ ले जाती ,
निर्विकार एक कर्मयोगी -सी !
अपनी धुन में वह चलती जाती,
मंजिल तक सबको पहुंचाती !

—------

19.
गरीब की दाल रोटी

ब्रेड - बटर हो या मक्खन-रोटी,
अर्थ है इसका रोजी - रोटी!
ऐशोआराम की यह चीज नहीं,
कुटुंब की गाढ़ी कमाई यह होती !

दाल - रोटी जो यहाँ हैं कहते,
लोग वहाँ ब्रेड- बटर हैं कहते!
नकल विदेशियों की हम करते,
ब्रेड- बटर खा हम हैं इतराते !

दीन यहाँ कठिन श्रम करते,
दो वक्त की रोटी अर्जित करने !
ब्रेड-बटर को वो भी तरसते,
जो गरीब विदेश में हैं रहते !

समस्या गरीब की एक ही जैसे,
देश हो या विदेश ही सही!
सोचे गरीब पैसे कमाएं कैसे ,
हर दिन की रोटी कैसे लायें ?

कहीं रोटी के लाले हैं पड़ते ,
अय्याशी कहीं पर है होती !
कहीं भूख से बिलखते हैं बच्चे,
कहीं तेल -फुलेल हैं महकती !

मत लूटो अधिकार किसी का,
रोटी सबको ही खाने दो!
दो -चार रोटी ही प्रचुर यहां,
बित्ते भर पेट को भरने को !

—------

20.
एक श्वान की अंतर्व्यथा

मूक हूं मैं , कहूँ मैं कैसे ,
मेरे अंतर्मन की बातों को ?
पवित्र हृदय है मेरा मनुज से ,
दुर्भाव से देखता न किसी को !

होता पालित नहीं अगर मैं,
लोग मुझे आवारा कहते !
खुद जीवन यापन करता मैं,
अहित न करता मैं उन जैसे!

अगर किसी का पालित होता,
स्वामिभक्त हो मैं धर्म निभाता!
निज स्वामी पर आँच न आवे ,
लक्ष्य सदा यह मेरा रहता !

खास बड़ी कुछ बातें हैं मेरी ,
नर न देख सके ,वह मैं देखता!
घ्राण शक्ति है अति अद्भुत मेरी,
प्रभु -रक्षा के जो काम है आता !

हम हैं मिसाल स्वामिभक्ति की,
स्वामी की रक्षा सदा हम करते !
कीमत उसके रोटी के टुकड़ों की ,
चुकता यहीं पर ही हम करते !

रोता मेरा दिल जब किसी को,
कोई कुत्ता कह कर गाली दे ।
समझ नहीं आता यह मुझको,
निकृष्ट हमें ये क्यों है समझते ?

जीवों में श्रेष्ठ कहा जाता नर ,
पर अधम जीव सबसे है वही!
करता है बैर नर से ही नर ,
पशु करता निज जाति से बैर नहीं !

लोभ, मोह, मद, द्वेष है नहीं ,
ईर्ष्या भी हमारे संग है नहीं !
झूठ, फरेब, धोखा,मक्कारी,
पशुओं के गुण ये कभी नहीं!

मनुजों से निवेदन है यह मेरा ,
कुत्ते को कभी भी गाली न दें!
मानव स्वयं ही दुर्गुणों से भरा,
मिले न वे दुर्गुण पशुओं में !

स्वामिभक्ति की बात जब होती ,
श्वानों का नाम सबसे आगे होता!
रहते हम निज धर्म निभाते नित ही,
कोई नर चाहे कृतज्ञ नहीं होता!

—------

21.
अश्वमुख से युद्ध-वर्णन

अश्व हूँ मैं युद्ध का, ध्येय मेरा युद्ध ही,
युद्ध मेरा जीवन औ' युद्ध मेरा धर्म भी।
कर्म मेरा एक ही, निज स्वामी की ही भक्ति,
आज मैं तुम्हें सुनाऊँ, कहानी इक युद्ध की।।

रहूँ मैं चाहे मित्र-पक्ष का,
या रहूँ मैं अश्व विपक्ष का!
रहा सदा ही ध्येय यह मेरा,
कभी न हो नत शीश प्रभु का !

कभी मैं होता चेतक राणा का,
कभी तुरंग मैं वीर शिवा का !
कभी मगध में चंद्रगुप्त का,
कभी अश्व मैं अशोक महान का!

कभी सुभग अश्व मैं होता,
उन अगणित वीरबालाओं का!
कभी वीर रानी दुर्गावती का,
तो कभी झाँसी की रानी का!

कभी होता वह धन्य अश्व मैं,
पार्थ के उस अजेय रथ का!
स्पर्श सदा पाता तन पर मैं,
वरदहस्त प्रभु नारायण का!

विपरीत भाग कभी यदि हो मेरा,
बना अश्व उन आतताइयों का!
कर आक्रमण और लूट मचाकर,
रक्त बहाते जो निरीह प्राणों का !

युद्धभूमि जो था कल तक,
विस्तीर्ण, शांत इक क्रीड़ा-स्थल!
मद, लोभ और महत्त्वाकांक्षा से,
बन गया आज इक भीषण रणस्थल!

बजे ढोल, तुरही, शंख, नगाड़े,
गूँज उठा गगन कर्णभेदी स्वरों से!
तलवारें खिंचीं और भाले टकराए,
गिरने लगे शीश अलग हो धड़ से!

गूँज उठा नभ आर्तनाद से,
गजराजों के कर्कश चिंघाड़ों से!
अश्वों के टापों और चीत्कारों से,
गिरती सेना के हाहाकारों से !

भीषण मारकाट वहाँ मची थी,
शीश अनेक कट रहे थे धड़ से!
कटे हाथ, पग, तन, अगणित बिखरे,
निर्जीव देह पड़े नर, अश्व औ' गज के!

समर शेष हुआ, था छाया मातम,
रक्तसिक्त हुआ था वह युद्धस्थल!
बिखरे पड़े थे अगणित शव उन वीरों के,
उन मूक, निरीह अश्व औ' गजराजों के!

भीषण-सा दृश्य था वह युद्धभूमि का,
रक्तसिक्त धरा थी, दृश्य जुगुप्सा भरा!
भर गई वह टूटे भाले , ढाल ,तलवारों से ,
वीरों के कवच, मुकुट और शिरस्त्राणों से!

कभी टीस उठती मेरे मन में,
करे क्यों कोई ऐसा नरसंहार?
ईर्ष्या और लोभ के वश में होकर,
करे क्यों कोई यह भीषण अत्याचार?

पूछो न , हुआ क्या परिणाम युद्ध का?
कितने हुए अनाथ, कितनों का सुहाग लुटा?
लाता सदा दुःख और विनाश ही संग्राम,
नहीं लाता युद्ध कभी सुख-शांति का पैगाम!

शब्दार्थ

तुरंग = घोड़ा
सुभग = भाग्यशाली / सुंदर / सौभाग्यशाली
पार्थ = अर्जुन
भाग = भाग्य
आततायी = अत्याचारी / अनिष्ट करने वाला
धरा = धरती
शिरस्त्राण = सिर की रक्षा करने वाला

—------

22.
लेखक का जीवन

लेखक का जीवन उस तरुवर सा,
तपकर स्वयं हमें छाँव वह देता।
सादगी-भरा जीवन वह जीता,
औरों को वह अमृतपान कराता।।

देखकर दुखियों के दुख को,
दिल उसका है पसीज जाता।
समाज की कुत्सित कुरीतियों को,
देख उसका मन विचलित होता।।

करता विरोध वह कुरीतियों का,
शंखनाद कर जागृत सबको करता।
अनाचार और शोषण के विरुद्ध,
जन-मन में चेतना वह भरता।।

उसे तोड़ती पत्थर जब वह देखा,
इलाहाबाद के पथ पर भरी दुपहरी में!
द्रवित हो गया हृदय 'निराला' का,
बह चली करुणा उसके अंतर से !

देख ' भिक्षुक ' की दीन दशा,
दिल उसका था पसीज गया!
कर चित्रण उसकी क्षुधा का,
सबकी आँखों को खोल दिया!

स्वयं 'निराला' का जीवन भी,
सुखमय और समृद्ध न था!
दिख जाता दीन विद्यार्थी कभी,
कर्ण -सा दान करने से न चूकता!

हुए कवि और लेखक कितने ही,
जिनका जीवन था सादगी भरा।
साहित्य-साधना करते रहना ही,
लक्ष्य रहा था उनके जीवन का।।

(विशेष नोट- इस कविता में महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला ' जी की कालजयी कविताओं ' तोड़ती पत्थर ' और ' भिक्षुक ' और उनके जीवन की घटनाओं को प्रेरणा के रूप में लिया गया है।)

—------

23.
व्यथा एक लेखक की

वीणापाणि के वरद् पुत्र की,
कैसे व्यथा सुनाऊँ?
सरस्वती के मानस-पुत्र की,
पीड़ा कैसे समझाऊँ?

अंतर्मन के भाव सहेजे,
कलम से विविध रंग भरकर।
विधाता की इस सृष्टि जैसी,
रचता एक सतरंगी संसार।।

सृजन के अपने उस दर्पण में ,
जग की वह छबि दिखलाता।
कुरीतियों का उन्मूलन करने ,
प्रचंड शंखनाद वह करता ।।

विरंचि जैसा रचता है वह,
लेखन का अद्‌भुत संसार!
श्रीपति जैसा पालन करता,
कुरीतियों का शिव-सा संहार!

सरस्वती के मानस-पुत्र की ,
सदा रही विडम्बना भारी !
जग ने कभी न सुध ली उसकी,
न ही रहा कोई उसका आभारी!

डिगो न तुम, न ही घबराओ,
विचलित न हो इन व्यवहारों से!
धीर पुरुष- सा बढ़ते जाओ,
वीणावादिनी के वरदानों से!

—------

24.
वह तोड़ती पत्थर वैसे ही

वह तोड़ती पत्थर वैसे ही,
इलाहाबाद के पथ पर ही!
वह उठाती गारा आज भी,
नींव डालती ऊंचे महलों की !

आज भी वह डामर बिछाती,
झुलसाती इस दोपहरी में भी !
सुस्ताने को पल भर छांव नहीं ,
न प्यासे कंठ को शीतल पानी!

पत्थर तोड़ते, सड़क बिछाते,
तपती धूप में श्रमिकजन वे!
ऊंची इमारत वो हैं बनाते ,
होती नहीं घर भाग्य में उनके!

न भरपेट भोजन ही मिलता,
न सिर छिपाने को घर होता!
अट्टालिका जब खड़ी हो जाती,
नाम कहीं भी इनका न होता!

द्रवित हुआ हृदय 'निराला' का,
जब उसे तोड़ती पत्थर तब देखा!
आज इलाहाबाद के पथ पर जैसा,
हर जगह हाल यही है श्रमिक का !

बनना हमें 'निराला' जैसा,
करुण- हृदय सबको है होना!
श्रमिकों के लिये सदा ही रखना,
अपने दिल में भी एक कोना !

टिप्पणी - महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला ' जी की कालजयी कविता ' वह तोड़ती पत्थर ' से प्रेरित यह कविता सभी को संदेश देती है कि गरीब श्रमिकों के प्रति हमारे मन में थोड़ी -सी सहानुभूति होनी चाहिए।

—------

25.
वह पुरानी खिड़की

वह पुरानी खिड़की बंद -सी,
बरसों से वह नहीं थी खुली ।
पटों को इंतजार था उसके,
कोई तो आये उन्हें खोलने ।।

अक्सर वह खिड़की बंद रहती,
खुलती वह तो कभी-कभी ही !
ध्यान नहीं देता उस पर कोई,
न ही करता कोई सफाई उसकी !

खिड़की वह बड़ी पुरानी थी,
जब आई उस घर वह रानी थी!
कितने जतन से वह लाई गई,
उस घर में शान से सजायी गई !

कितने ही साल वह काम आई,
दिखाई सुंदर दृश्य वह कितने!
बरसों उसने सुरक्षा सबको दी ,
झेले थे मौसम के थपेड़े कितने !

आज पड़ी वह जीर्ण -शीर्ण सी,
राह निहारे अपने उद्धार की !
कोई रंग दे उसे कुछ ऐसा ,
निखर जाये रूप पहले जैसा !

कल तक जो इस घर की रौनक थी,
हवा और उजालों का झरोखा थी!
उम्र के इस मोड़ पर है आज अकेली,
जैसे है बुजुर्ग माता पिता की पहेली !

माता पिता भी तेरे हैं उस खिड़की से ,
बरसों से जिन्होंने तुझे पाला -पोसा!
बनकर दीवार खड़े हर मुसीबत में वे
पलकों की तरह तुझको संभाले सदा!

जीर्ण शीर्ण है अब वह खिड़की,
निर्बल अब वे जनक तेरे हैं !
जीवन -भर पालन उनने की तेरी,
अब उनकी सेवा के दिन तेरे हैं !

तुच्छ नहीं वह पुरानी खिड़की,
रंग दो उसको सुंदर रंगों से!
वृद्ध जनक तुम्हारे हेय नहीं,
सेवा करो सदा तन- मन से!

—------

26.
नरपिशाच का सफर

बचपन में मैं सुना करता था,
भूत-प्रेत की कहानियाँ कितने ही!
नरपिशाच, चुड़ैल,डायन क्या- क्या,
किस्से अजीब नानी सुनाती थी!

तब अबोध था मैं क्या जानता ?
सत्य समझता उन किस्सों को!
उन भूत, प्रेत और नरपिशाच का ,
जो डरा, सता कर मारते नर को !

बीता समय, अधेड़ हुआ मैं,
उन किस्सों को संजोए हुए मन में।
क्या सच में ही वे खून चूसते,
निरीह मनुज का, पिशाच बन के?

नरपिशाच ने भी तय किया सफर,
बदला वह अपना रूप भयंकर!
लगा रक्त-शोषण करने बहुविध,
जग में जो सब हैं दीन-हीन नर!

नर से ही वह नरपिशाच बनकर,
वंचित लोगों का लहू पी रहा!
उनके श्रम का वह दोहन कर ,
उनको अधिकारों से वंचित कर रहा!

बनो न नरपिशाच शोषण कर,
तुम उन दीनों के शोणित का !
बन जाओ अब नर से नारायण,
पोषण करो दीन-दुखियों का !

—------

27.
मत छोड़ो कभी वृद्धाश्रम में

ठिठकी सी वह देखती रही,
आंखों में गहरी भीति समाई!
रह गई वह उसको ही देखती,
आंखें उसकी थी बरस रही!

तन निर्बल उसका कांप रहा ,
मारे डर के उसका हाल था बुरा !
स्वर काँप रहा,गला रुँध गया,
छा गया आंखों के सामने अंधेरा !

निर्बल हाथ उसने बढ़ाया,
पुकारी वह कांपते स्वर से!
मुझे यहाँ मत छोड़ो बेटा ,
रहूँगी मैं यहां अकेली कैसे ?

पर निष्ठुर था लाल वह उसका,
देख उसे दिल तनिक न पसीजा!
ठीक रहेगा यहीं तुझे माँ,
कह छोड़ उसे वह चला गया !

मूर्छित हुई वह माँ बेचारी,
विपदा उसकी थी यह भारी!
जिस पर अपना जीवन वारी,
भोंका उसने ही आज कटारी !

माता उठकर आंसू पोंछी ,
मुझसे भूल हुई क्या सोची!
बातें उस पुत्र के बचपन की,
आंखों के आगे सब घूम गईं!

बेटे को जब वह स्कूल छोड़ती,
फाटक के पास खड़ा वह रोता।
तब माँ भी संग रोया करती थी,
दिल उसका तब कितना घबराता !

वह कितने ही दिन रोई थी,
बेटे का मुख देख न पाती!
पर वह उसको नहीं कोसती,
आखिर वह इक माँ जो थी!

उस कपूत को याद न आया,
बचपन उसका कैसा था बीता !
भूल गया कि वह जब भी रोता ,
माँ को सदा पास में ही पाता!

अंधेरा होते ही जी घबराता,
दिल जोर से धड़कने लगता !
कभी न दुष्ट वह बेटा आया ,
बन गया वह माता का हंता !

वह कपूत तो भूल ही गया ,
माता का वह निश्छल अनुराग!
वह निष्ठुर सब कुछ भूल गया ,
मां की ममता और वह त्याग!

मत छोड़ो कभी वृद्धाश्रम में,
तुम अपने वृद्ध मात- पिता को!
जीवन- भर तुम चैन न पाओगे ,
तड़पोगे तुम निज पुत्र- स्नेह को !

—------

28.
एक सड़क की आत्मकथा

मैं हूं टूटी- फूटी सड़क अभी,
अपनी बदहाली पर हूं रोती!
मंज़िल तक पहुंचाने वाली,
कहती मैं अपनी राम कहानी !

चीरकर तूने धरती के सीने को ,
मुझ सड़क को तूने कभी बिछाया!
तेरे कदम रौंदते रहे थे मुझको,
फिर भी मंजिल तक पहुंचाया !

धरा पर पत्थरों को बिछा,
हथौड़ों से पीट पीट कर पाटा।
डाल खौलती गर्म अलकतरा ,
तूने मुझे लहूलुहान भी किया !

कष्ट अनेकों सहती मैं आई,
फिर भी तुझे मंजिल तक पहुंचाया!
जर्जर हुई आज काया यह मेरी,
तन टूटा है अब ,बस कंकाल बचा !

सड़क हूँ मैं ,तुझे मार्ग दिखाती,
सदा मैं मंजिल तक पहुंचाती!
सबके भार को मैं ढोती रहती,
कभी उफ़ तक मैं नहीं करती!

देख मुझे तुम मुँह मोड़ क्यों रहे,
अनदेखा कर कहाँ चले जा रहे?
टूटी इस देह को निर्मित कर दे,
इस पथ चल , फिर मंजिल पा ले!

—------

चतुर्थ सर्ग
जीवन -दर्शन

29.
बूढ़ी आँखें

अपनों की पदचाप पर खुलतीं
और ठहर जातीं—
एक चौखट पर,
ये बूढ़ी आँखें!

पास से गुज़रते हैं अपने,
पर समय कहाँ?
कि कोई क्षण भर ठहरे,
और पढ़े इन आँखों में तैरती
—मौन भाषा!

तरसती हैं ये आँखें,
कि बहू-बेटे को जी भरकर निहारें,
पूछें दुलार से— "कुछ खाया बेटा?"
पर पास होकर भी मीलों की दूरी है,
बात अधरों तक आकर
कंठ में ही घुट जाती है!

कोई सुन भी ले पुकार,
तो रूखा सा प्रश्न उछालता है—
"क्या चाहिए जी?"
भला क्या चाहिए इन्हें?
संसार की कोई वस्तु नहीं,
इन्हें तो बस थोड़ा सा वक्त चाहिए,
घर का एक निश्चित कोना नहीं,
अपनेपन का अधिकार चाहिए!

सुबह का एक सादर वंदन,
सांझ को पास बैठकर बिताने को कुछ घड़ियाँ,
और क्लांत चरणों को सहलाते तुम्हारे हाथ...
यही तो है इनका पूरा संसार!

देखो! लौट आएगी इन आँखों की खोई चमक,
तन-मन प्रसन्नता से भर जाएगा!
बड़ों की सेवा कभी निष्फल नहीं जाती,
तुम्हारी झोली आशीष से सदा भरी रहेगी!

—------

30.
दादाजी का चश्मा

दादाजी का वह चश्मा गोल- सा,
उनके लंबी नाक पर टिका हुआ!
सबके मन में झांक वह लेता,
और चेहरे सबके पढ़ लेता था !

नाक पर बैठ दादाजी के,
गर्व से छाती चौड़ी वह करता!
कर्णद्वय पर टेक लगाये,
मानों पहरेदारी वह करता !

चश्मे से झांकती वे आँखें,
कभी डर ,कभी श्रद्धा जगाती।
कभी मार्ग दिखाती वह हमें,
कभी हम पर प्रेम बरसाती।।

अमूल्य था चश्मा दादाजी का,
घर की रखवाली वह करता !
होड़ लगती हम बच्चों में सदा ,
चश्मा लाकर उनको देने का !

नहीं रहे हैं अब दादाजी,
चश्मा उनकी यादें सँवारे!
अब वह शोभा पाता रहता ,
तस्वीर के संग दादाजी के !

दादाजी की याद सताती,
या कोई समस्या आती ।
लगता जैसे उसी चश्मे से,
उनकी आँखें हमें घूरती !

—------

31.
चल वहां जाते हैं

चल वहाँ जाते हैं,
उस पार्क में उसी बेंच पर,
जहाँ किया था चार दशक पहले ,
हमने प्यार का पहला इजहार !

चल वहांँ जाते हैं,
उसी सिनेमा हाल में,
जहाँ हम देखा करते थे फिल्में,
और हम वादा करते थे ,
एक दूजे के लिये जीने का!

चल वहाँ जाते हैं,
उस सागर के तट पर,
जहाँ हम मदमस्त शामें,
घंटों साथ बिताया करते थे,
और लहरों से अठखेलियां करते थे !

चल वहाँ जाते हैं,
उन पेरिस , लंदन की राहों में,
ऐफिल टॉवर , लंदन ब्रिज देख जहाँ,
खूबसूरत खयालों में खो जाते थे,
और हम जन्नत का अहसास करते थे!

चल वहाँ जाते हैं,
नहरों की सुंदर वेनिस नगरी में ,
कर याद जहाँ शेक्सपियर के पात्रों को,
हम भी वही नायक नायिका बन जाते थे,
प्रेमी बन हम भी रूमानी हो जाते थे!

चल वहाँ जाते हैं,
हमारे उसी पुराने घर में,
जहाँ हमने बच्चों की परवरिश की थी ,
अब जब बच्चों के घर बस गए ,
हम फिर से उन्मुक्त हो गए ,
फिर से वही अहसास हम पायेंगे !

चल वहाँ हम फिर जाते हैं,
वही पार्क ,वही सिनेमा हाल चलें,
वही समुद्रतट पर बैठें,
वही लंदन, पेरिस और वेनिस देखें,
फिर से रुमानी जिंदगी जी लें!

—------

32.
प्रेम संदेश

कैसे लिखूँ यह पत्र प्रेम का,
प्रिये मैं नहीं हूँ वह यक्ष -सा!
मेघ को जो दूत बना सका,
प्रिया तक संदेश जो ले गया!

नहीं मैं निषादराज नल- सा,
जो हंस को दूत बना कर भेजा!
करने बखान अपने गुणों का,
भीमसुता दमयन्ती है जहां!

ना मैं हूं शांतनु ,दुष्यंत- सा,
या पुरूरवा -सा ही प्रेमी!
ना ही मैं प्रद्युम्न अनिरुद्ध -सा ,
अति बलशाली और जयी ही!

पर इतना कहता प्रिये तुझे,
मेरा प्रेम केवल तुमसे है!
सदा निछावर करूँ मैं तुम्हें,
प्रेमनिधि मेरी जो अनमोल है!

चाह इतनी तुझसे है प्रिये,
रुक्मिणी ,सुभद्रा सा प्यार मिले!
प्रेम कभी यह कम न हो सके ,
जीवन सदा ही प्रेममय रहे !

प्रेम के पथ पर नित हम चलें,
उन पुराण -पुरुषों के जैसा!
भले अति क्षुद्र हम सम्मुख उनके,
पर प्रेम में बने उनके जैसा !

—------

33.
मन का आईना

तेरा ही प्रतिबिम्ब है !
तेरा अपना ही रूप है !
जो तेरा असली चेहरा है !

चेहरा तेरा वह नहीं ,
जो बाहर से दिखता है!
असली चेहरा है वही ,
जो आइना दिखाता है !

जब तुम खुश हो तब देखो,
जब क्रोध में हो तब देखो ,
जब ईर्ष्या -द्वेष जगे तब देखो,
जब मन में चोर छुपे तब देखो !

जब खुश हो तो वह चेहरा,
बड़ा ही मनमोहक दिखता !
आंखों में चमक, अधरों पर हंसी,
कोई गंधर्व या अप्सरा का लगता !

जब क्रोध की आग में जलते हो,
चेहरा तेरा अति विकृत दिखता !
आंखें लाल , भींचे हुए दांत ,
राक्षस का चेहरा वह लगता !

बिचका मुंह और टेढ़ी भौंहें ,
माथे पर बल , सिकुड़ी आंखें!
ईर्ष्या जब जगती है मन में,
चेहरा डायन - सा लगता है !

आंखें बड़ी और तनी हुई,
भौंहें टेढ़ी और उठी हुई !
प्रतिशोध की भावना जब उठती,
चेहरा वह शैतान -सा दिखता!

जब दुर्भावना उठे मन में,
तब चेहरा चोर- सा लगता !
छोटी आंखें, स्याह सा चेहरा,
कालिख पुता हुआ -सा दिखता !

जब होता प्रेम तेरे मन में,
चेहरा अति सुंदर दिखता !
नैन विशाल और मंद हास ,
रूप किसी देवता- सा लगता !

चेहरा तेरा वह नहीं ,
जो बाहर से दिखता है!
असली चेहरा है वही ,
जो आइना दिखाता है !

—------

34.
बालक - सा चेहरा

आईने में जब मैंने देखा,
अपना चेहरा न पहचाना!
माथे सजी चिंता की रेखा,
आंखों में इक सूनापन था !

ऐसी भी थी कौन सी चिंता,
जिसने हँसी को मिटा दिया?
वह अल्हड़पन कहाँ गया ?
वह भोलापन अब कहाँ गया ?

फिर मैंने उस तस्वीर को देखा,
जो दीवार पर थी टंगी हुई !
वह एक अबोध बालक का चेहरा,
जिस पर मुस्कान बिखर रही थी!

वह मुस्कान बड़ी निश्छल थी !
नहीं कपट या छल उसमें था !
वह तस्वीर तो मेरी अपनी थी ,
जब मैं एक छोटा-सा बच्चा था !

वह बालपन कितना सहज था,
बहती निर्झर-सा निर्मल था!
होने लगा जैसे ही मैं बड़ा ,
मन कलुषित होता चला गया !

चन्द्रबिंब - सा वह सुंदर चेहरा,
खो दिया अपनी सुंदर आभा !
कलुषित हिय ,बुझा -सा चेहरा ,
मन चिंतित ,आनन मलिन हुआ!

मन मेरा अति व्यथित हुआ,
चेहरा वही मुझे फिर पाना है!
निर्मल मन और वह भोलापन,
मुझको फिर वह सब पाना है!

चेहरा मन का दर्पण होता,
मन सुंदर तो रम्य वदन होता!
मन से कलुषित भाव को हटा,
पाया मैंने बालक -सा चेहरा !

—------

35.
मेरी परछाई

एक सुबह खिली धूप में,
देखी मैंने अपनी परछाई।
सोचा मैंने अपने मन में,
क्यों यह मेरा पीछा करती?

सुबह,शाम या हो दोपहरी,
या हो धुंधलापन रातों का!
पीछा मेरा वह न छोड़ती,
बनकर रहती मेरा साया !

कभी कभी वह आगे चलती,
लंबी हो वह राह दिखाती है!
कभी कभी वह पीछे चलती,
छोटी -सी बच्ची बन जाती है !

मैं बैठूं तो वह भी बैठे,
खड़ा रहूं तो खड़ी रहे।
मैं दौड़ूं तो वह भी दौड़े,
सोऊँ मैं तो वह भी सोए !

झुंझलाकर मैंने उससे पूछा,
पीछा तू मेरा क्यों करती ?
शांत भाव से वह यूँ बोली ,
क्योंकि परछाई हूं मैं तेरी !

तेरे साथ उठती -बैठती,
तेरा साथ निभाती हूँ मैं !
तू जो करता वह मैं करती,
तेरे कर्म दिखाती हूं मैं !

मैंने पूछा - तू बिना कहे,
मेरे पीछे ही क्यों रहती है?
मेरे सभी कर्मों का कैसे,
ब्यौरा तुम यूं रखती है ?

बोली वह परछाई मेरी,
मैं साक्षी तेरे कर्मों की!
साथ सदा तेरे मैं रहती,
सही राह मैं तुझे दिखाती!

—------

36.
सौतेला भाई

एक पिता के संतान सदा ही ,
भ्राता ही हैं कहलाते!
पिता एक हैं,गोत्र एक ही,
फिर सौतेलापन क्यों आए ?

यदि विमातृज हैं तो क्या,
प्रेम सिंधु उनमें नहीं बहता ?
विमातृज होने पर क्या सदा ,
ईर्ष्या और द्वेष ही पनपता ?

देखो दशरथ के पुत्रों को,
भ्राता अनुपम वे कहलाये!
मातृस्नेह की बात करें तो,
स्नेह तीन माताओं की पाये!

भ्रातृप्रेम अनुपम था उनका,
भ्राता संग कानन सौमित्र चले!
सिंहासन प्रतिष्ठित कर पादुका,
भ्राता भरत नंदीग्राम चले !

वासुदेव वे बलराम कृष्ण हुए,
माता रोहिणी औ' देवकी थीं!
बलरामानुज वे कृष्ण कहलाये,
उस भाई की पहचान यही थी !

मलिन भाव सौतेलापन होता,
करती नाश वह होती है जहां!
सुरुचि ने जो दुर्भाव जगाया,
उत्तम कोई सुख ही नहीं पाया!

सौतेला कोई भाई नहीं होता ,
होती है यह भावना नीच-सी!
आखिर भाई तो भाई ही होता,
तोड़ो न मन उस भाई का कभी!

शब्दार्थ –

१) विमातृज - वे भाई जिनकी माता अलग किंतु पिता एक हों,
२) प्रेमसिंधु =प्रेम की नदी,
३) कानन = जंगल,
४) सौमित्र = लक्ष्मण ,
५) वासुदेव = वसुदेव के पुत्र यानी बलराम और कृष्ण दोनों ही ,
६) बलरामानुज = बलराम का भाई यानी कृष्ण।

—------

37.
मानव एक पुतला

मानव एक पुतला ऐसा है ,
बनाया जिसको विधाता ने!
लीला करने की जब सूझी,
रचना की संसार की उसने!

रंगमंच यह संसार है ऐसा ,
लीलास्थली उसकी यह सदा !
कभी पात्र बन ,नाटक रचता,
सूत्रधार स्वयं उसका वह होता!

पुतले को वह स्वयं सजाता,
कभी रावण या कंस बनाता!
कभी राम या कृष्ण वह बनता,
लीला नाटक है वह करता !

कभी तुझे वह पार्थ बनाता,
कर्ण बनाकर परीक्षा लेता!
कभी भीष्म- सा तुझे सजाता,
भीषण प्रण तुझसे करवाता !

कभी दुष्ट दुर्योधन बना तुझे,
महाभारत कभी वह रचता!
कुंती, द्रौपदी बना कर तुझे,
सदा तुम्हारे संग वह रहता !

वह तुझे चाहे जो भी बनाए ,
चिंता तुझको नहीं करना है!
रावण,कंस ,धृतराष्ट्र दुर्योधन,
बनाए जो तुझे वही बनना है!

दुनिया के रंगमंच पर तुम्हें,
अभिनय बहुविध करना है।
निर्लिप्त , निर्विकार हो ,तुझे,
अपना वह पात्र निभाना है !

—------

38.
भारत की नारी

हे नारी, तुम महान हो!
दो मात्राएं अधिक नर से तेरे !
नर पर तुम तो भारी हो,
तुझसे ही हैं ये नर-नारी सारे!

भगवान को जन्म लेना होता,
तो वह भी शायद यही सोचता !
कौन है ऐसी नारी जिसका,
लाल वह बने और वह बने माता!

नारी तुमसे ही यह सृष्टि हुई ,
सारा जग तेरे उदर में समाया!
मुंह में ब्रह्मांड दिखानेवाला कान्हा भी,
देवकी के गर्भ में सोया था !

ईश्वर की सृष्टि में सबसे ,
नारी तुम ही अनुपम हो।
तेरी महत्ता के क्या कहने,
तुम तो भारत की नारी हो!

जीवन के हर एक क्षेत्र में,
कितनी महान नारियां हुईं !
वेद ,उपनिषद ,विज्ञान,कला में ,
रणकौशल और तर्क में भी !

गार्गी हुई महान ब्रह्मवादिनी,
जिसने याज्ञवल्क्य से तर्क किया !
मंडन मिश्र की सती भारती ,
विदुषी जिसने शंकर से प्रश्न किया !

रणकौशल से रानी कैकेयी ने ,
दशरथ को देवों पर विजय दिलाई!
सत्राजित सुता सत्यभामा ने,
रण में नरकासुर को हराई !

पातिव्रत्य के बल पर अनुसूया,
त्रिदेवों को शिशु बना दिया !
सती सावित्री ने यम से छुड़ा ,
सत्यवान को फिर से पाया !

है महान त्याग माता सीता का ,
जिसने राम के संग वनवास किया!
वहीं उर्मिला भी कम थी क्या,
जिसने चौदह वर्ष निद्रा को धारा!

कलियुग की जो बात हम करें,
तो हुए अगणित पूज्य नारियां !
रानी लक्ष्मीबाई और दुर्गावती ने,
याद दिला दी कैकेयी सत्यभामा!

हुई अनेक नारियां हर क्षेत्र में,
तब थीं वे और हैं वे आज भी!
बदलेगा युग पर नहीं बदलेगी ,
भारत की नारी महत्ता तेरी !

पर हाय! आज भारत की नारी,
निज स्वरूप ही वह भूल गई !
कैसे पथभ्रष्ट वह आज हो गई,
भूली धर्म ,कर्म ,संस्कृति अपनी !

सकल सामर्थ्य सिद्ध होकर भी,
भूल रही संस्कृति वह अपनी!
अन्य संस्कृति के मोहपाश में घिरी,
रहन- सहन, वसन ,अपना भूली!

मत भूलो कि तुम हे नारी,
तुम उस भारत की नारी हो!
जन्म दिया है जिसने ही,
असंख्य महापुरुष और देवों को!

निज संस्कृति को तुम न भूलो,
पाश्चात्य मोह में तनिक न पड़ो!
तुम ही गार्गी ,मैत्रेयी, कैकेयी हो,
तुम महान भारत की नारी हो!

—------

39.
वह बंद खिड़की

रहती है बंद वह खिड़की,
वही खिड़की मेरे सामने वाली!
हर पल वह कौतूहल जगाती,
कौन है वहाँ जो छुपकर रहती!

मैं कभी-कभी देखा करता,
खिड़की हरदम बंद ही पाता।
मन ही मन मैं कल्पना करता,
होगी उस पार एक अप्सरा!

बीते कुछ दिन असमंजस में,
कौतुक मेरा बढ़ता जाता।
हर दिन मैं पालता ही रहा,
एक झलक पाने की आशा!

उस दिन उत्सुकता बढ़ी मेरी,
जब वह खिड़की थोड़ी खुली रही!
घंटों मेरी नज़रें वहाँ टिकी रही,
पर खिड़की पर कोई दिखी नहीं!

आखिर वहाँ इक चेहरा उभरा,
चेहरे पर पड़ रही थी छाया!
पर वह नहीं थी कोई बाला,
कुंचित केश और मुख निस्तेज था !

वह नहीं किशोरी, ना ही यौवना,
वह थी सितकेशी कृशगात वृद्धा!
घर में उसका न कोई अन्य सहारा!
पता चला मुझे जब मां ने बताया!

वह एक अति वृद्धा माता थी,
ठंड से बचने बंद खिड़की रखती!
खिड़की से लगी थी शय्या उसकी,
वृद्ध पति के संग वह रहती थी !

श्रद्धा से नतमस्तक मैं हुआ,
मन ही मन मैंने प्रणाम किया!
अब घर जाकर उनका हाल पूछता,
आशीष उनका सदा मैं पाता !

—------

40.
सात समंदर पार की दुनिया

सात समंदर पार की दुनिया,
है क्या वह गजब की दुनिया !
एक बार जो वहाँ पहुंचता,
वापस वह कभी नहीं लौटता!

दौलत की भरमार है वहाँ,
चकाचौंध में सब खो जाते!
घर पर छूटे जो मात- पिता,
यादों में कम ही हैं आते !

यहाँ तुम्हारे मात-पिता की ,
हालत कही नहीं जाती है !
हर क्षण तुम्हारी यादों में ही,
अविरल अश्रुधारा बहती है!

याद करो तुम्हें विद्यालय में,
जब कभी छोड़ वे आते थे!
घर पर आते ही तुम उनके,
कैसे गले लिपट जाते थे !

उनको आज तुम्हें देखे बिना ,
पल भर भी चैन नहीं आती!
रो -रोकर हाल बुरा होता,
आंखों में नींद नहीं आती!

वे व्यंजन और पकवान नहीं ,
अब तेरी माँ बनाती है!
जो तेरे पसंद की होती थी ,
अब उनको खा भी न पाती है!

वे जलेबी और इमरतियां,
पिता तुम्हारे जो लाते थे!
लल्ला को पसंद हैं कह वे,
आहें भर कर रह जाते हैं !

आ जाओ तुम अपने घर को,
है रोटी तेरे अपने घर में भी!
यहाँ तेरे माता पिता हैं देखो,
है उनका प्रेम और आशीर्वाद भी!

जो तुम यहाँ नहीं आ सकते,
तो साथ उन्हें भी लेते जाओ!
रहो तुम उनकी ठंडी छाया में,
आशीष सदा ही उनके पाओ!

—------

41.
वह मरफी रेडियो

बरसों से ताक पर था वह पड़ा हुआ,
धूल से सना मरफी रेडियो हमारा ।
एक दिन जो मेरी नज़र उस पर पड़ी,
बीते हुए बचपन की याद आ गई !

ताक पर से उसे तब मैंने उतारा ,
धूल झाड़ कल पुर्ज़ों को संवारा खुद ही!
संशय भरे मन से उसे चालू किया ,
शायद कोई आवाज़ सुनाई पड़ेगी !

घर्र घर्र की आवाज़ सुनाई जो पड़ी ,
आंखों में मेरी इक चमक आ गई!
घुंडी को मैंने धीरे-धीरे जो घुमाया ,
' यह आकाशवाणी है ' कोई पुकारा !

पुराना रेडियो और नई आवाज़ थी ,
वह आवाज़ मुझे अतीत में ले गयी !
रेडियो से जुड़ी सब बातें याद आई ,
मेरा बचपन और मेरे मां,पिता ,भाई !

हर दिन सुबह पिता का समाचार सुनना,
दोपहर मां का वह फ़िल्मी गाने सुनना !
रेडियो की आवाज़ में कौतुक भरा रहता ,
हरी बत्ती उसका एक स्वप्नलोक- सा लगता !

कुछ बड़े हुए तो हमने रेडियो को समझा ,
गाने और कहानी सुनना शौक़ था हमारा !
बड़े भैया जब लगाते ' बिनाका गीतमाला ' ,
मन हमारा कहीं स्वप्नलोक में खो जाता !

रेडियो में आज आवाज़ थी कुछ नई,
पर मुझे वह दशकों पीछे ले गई !
याद आ गये मां,बाप,बड़े भैया मेरे ,
छोड़ गये थे वे सब यादें बहुतेरे !

रेडियो बज रहा था ,आवाज़ थी नई,
पर कानों में गूंज वही पुरानी ही थी !
उन फिल्मी गीतों और बिनाका की तान ,
रेडियो सीलोन औ' अमीन सयानी की यादें महान !

आंखें भर आई, रेडियो बज रहा था!
बिछुड़े हुए अपनों का दर्द जग रहा था !
बड़े प्रेम से रेडियो को मेरे हाथों ने टटोला ,
आवाज़ नई थी ,पर अतीत फिर से बोला !

—------

42.
किताब से बात

जब भी मन मेरा उदास -सा होता,
कमरे के एक कोने में मैं बैठ जाता!
जब कोई मुझसे बात नहीं करता,
तब मैं किताब से बात करता !

जब किताब मैं हाथों में लेता ,
चेहरा उसका तब खिल उठता!
जब उसको अपनी व्यथा सुनाता ,
बातें कर वह मन बहलाती मेरा !

कभी खुले आसमान की सैर कराती,
कविवर पंत के 'बादल' से वह मुझे मिलाती!
कभी 'वर्ड्सवर्थ' संग 'वेस्टमिन्स्टर ब्रिज' दिखाती,
'डैफोडिल्स' की दुनिया में वह कभी ले जाती !

कभी बच्चों की दुनिया मुझे दिखाती,
'सुभद्राकुमारी चौहान' के पास ले जाती!
कभी 'कदंब का पेड़' वह मुझे दिखाती,
सस्वर वह 'झाँसी की रानी' कविता सुनाती !

कभी 'निराला' के आँखों से जग को दिखाती,
दीन-हीन व्यक्ति का हाल मुझे वह बताती!
कभी 'भिक्षुक' तो कभी 'वह तोड़ती पत्थर' स्त्री,
जग की वह तस्वीर दूसरी वह कभी दिखाती!

कभी वह 'प्रेमचंद' की याद वह दिलाती,
'गोदान 'कभी तो कभी 'गबन' मुझे दिखाती!
कभी 'सेवासदन' तो 'प्रेमाश्रम' कभी,
रंगबिरंगी दुनिया की सैर वह कराती !

कभी आध्यात्म की दुनिया में ले जाती,
ज्ञान भक्ति की बातें कई मुझे वह सुनाती!
कभी 'रामायण 'तो 'महाभारत' कभी,
कितनी ही कहानियाँ वह मुझे सुनाती!

जब मैं थक जाता या होता अकेला,
बातें करने कोई हमदर्द नहीं मिलता!
कमरे के उसी कोने में मैं बैठ जाता,
और किताब से बात मैं करने लगता!

—------

43.
संजीवनी

जीवन देती है संजीवनी ,
रूप अनेकों होते इसके।
कभी दृश्य कभी अदृश्य वह होती,
जीवनदायी शक्ति वह होती।।

बूटी थी एक वह संजीवनी ,
लक्ष्मण के प्राण जो बचाए थे !
वह गोपियों की चरणरज थी,
कान्हा की जिसने पीड़ा हर ली !

वह था एक मंत्र मृतसंजीवनी,
दैत्य गुरु शुक्राचार्य जिसे जानते!
देवगुरु बृहस्पति ने तब भेजा,
पुत्र कच को वही मंत्र सीखने !

मृत को जीवन देती संजीवनी
जड़ को चेतन है वह करती!
सुप्त पड़ी नाड़ी को वह जगाती,
संचार नवजीवन का वह करती !

रूप कई संजीवनी है धरती,
औषधि कभी वह मंत्र कभी होती!
कभी वह प्रेमपूर्ण वचन ही होती,
आत्मीयता ही कभी संजीवनी होती!

रुग्ण को औषधि है संजीवनी,
वृद्धों को अपनत्व है संजीवनी!
आत्मीय भाव से परिपूर्ण वचन ही,
माता-पिता को होती है संजीवनी !

—------

44.
सांवली लड़की

अगर होती साँवली लड़की ,
उसके रंग पर बोलते सभी।
नजरें कई उसी पर टिकती,
जितनी मुँह उतनी बातें होती!

कोई तुलना उसकी हैं करते,
कभी माता- पिता के रंग से!
कभी वे हीन भावना जगाते,
कर तुलना उसे अपनी बेटी से!

बातें उनकी ऐसी हैं होतीं ,
बाजार में रंग ज्यों बिकता हो !
मनचाहा रंग ले ले जैसे कोई,
ज्यों कुदरत की कुछ बात ही न हो!

श्याम रंग को तुम क्या जानो,
रंग दूजा नहीं उस पर चढ़ता!
रंग सांवला है श्याम का जो,
सबको अपने रंग में है रंगता !

क्रोधित हुई जब माता गौरी,
श्याम रंग धर हुईं वह काली!
कर असुरों का संहार तब ही ,
जग की विपदा उसने हर ली !

यज्ञकुंड से प्रकट याज्ञसेनी,
द्रुपदसुता हुई थी वह द्रौपदी !
श्यामलवर्ण वह अति सुंदरी थी ,
कृष्णसखी वह कृष्णा कहलाईं!

अपमान से मन क्रोधित जब हुआ,
कुरुसभा में उसने कठोर प्रण किया!
उस प्रण से जो अति भीषण था,
कौरव कुल का सर्वनाश हुआ !

यम की प्यारी बहन वह यमी,
बनकर पावन यमुना वह बही !
वह श्यामल, श्यामल उसका जल भी,
पापमुक्त वह सबको है करती !

सांवलापन नहीं है कोई हीनता ,
श्वेत वर्ण कोई गुण नहीं भारी!
श्याम रंग बड़ा मोहक होता ,
अति सुंदरी द्रौपदी,वह कृष्णा थी!

गर्व न करो इस रंग पर अपने ,
यह शाश्वत बनकर नहीं रहेगा!
उपहास न करो श्याम वर्ण का,
करो सम्मान सांवली लड़की का !

—------

45.
वायुयान से सैर

बचपन में मैं दौड़ा करता,
होता जब आवाज़ गगन में ।
उड़ता हुआ विमान पंछी -सा ,
मुझे दिखाती माँ तब नभ में।।

माँ से मैं सुनता रहता था,
किस्से देवी-देवताओं के !
उनके गगन -विहार की कथा,
विमान जो उनके अद्‌भुत थे!

माँ से पूछा करता था मैं,
यह विमान होता कैसा है?
इसमें कौन उड़ा करता है,
उड़ने में कैसे लगता है ?

माँ कहती विमान जो होता ,
अति सुंदर अति न्यारा होता!
देवगणों का वाहक वह होता,
स्वर्ण रत्न मणिमय वह होता !

मैं बोला- "माँ मुझको उड़ना,
तो क्या मुझे देव है बनना?"
माँ बोली-"ऐसा नहीं बेटा!
मानव भी विमान में उड़ता "!

एक दिन मैंने पूछा -"बोलो ,माँ !
यह मानव का विमान कैसा होता ?"
नभ में उड़ते वायुयान को दिखा ,
कैसे वह उड़ता मां ने समझाया !

जिद की मैंने ,"माँ मुझको भी,
वायुयान से नभ में उड़ना !"
माँ बोली - " बेटा,होकर बड़े कभी,
उड़ोगे विमान में ,तुम भी देखना !"

माँ का कहना आज सच हुआ,
यात्रा विमान से मैं करता रहता!
उत्कंठा भरी थी मेरी प्रथम यात्रा ,
पर तुरंत उदासी ने आ घेरा !

हो गया मैं उदास तत्क्षण ही,
याद मुझे माता -पिता आए!
मेरे सुयोग्य होने से पहले ही ,
छोड़ मुझे वे दूर चले गए !

इच्छा बड़ी मन में थी मेरे,
मात-पिता को सैर कराऊँ!
बैठाकर उनको वायुयान में,
नील गगन में उड़ता जाऊँ!

माता की वे अनोखी बातें,
सदा गूँजती मेरी कानों में!
सुनी जो अद्भुत किस्से मैंने,
उन विभिन्न विमानों के बारे में!

सैर नहीं मैं करा सका था,
मात- पिता को वायुयान से!
वायुयान में जब भी मैं चढ़ता,
टीस एक उठती है मन में !

—------

46.
जीवन-संध्या

पतझड़ के पत्ते बेचारे,
आकर धरती पर जब गिरते!
कोई अनदेखा उनको कर देता ,
तो कोई फेंक बाहर कर देता !

इधर-उधर बिखरे पड़े रहते ,
कोई पीला , कोई भूरापन लिये !
पर सूखे नहीं , न ही चरमराते,
जीवन -रस अब भी बाकी है उनमें !

पीलापन उनका अनुभव कहता,
भूरापन उम्र उनकी सेवा की कहता!
आता वक्त जब उनके आराम का,
तिरस्कार तब उनका स्वागत करता !

कभी थपेड़े झाड़ू के लगते,
कभी गालियों की बौछारें!
कोई फेंके उन्हें भौंह सिकोड़े,
कूड़े करकट के गंदे ढेरों में !

भूल गए कृतघ्न हो सभी,
कभी यही कोंपल बन उपजी!
पर्ण बन विकसित हुई यही,
पल्लव को पाला इसने ही !

नवपल्लवों को सींच निज रस से,
फलित किया इन जीर्ण पत्रों ने !
सुवासित फूल ,सुस्वादु फल कितने,
पाकर भी ये मनुज सब कुछ भूले!

आज ठौर वह छोड़ा अपना ,
उग सकें कि नूतन पर्ण वहाँ!
उनको स्थान देने वह त्यागा,
बरसों से रहा जो घर अपना !

मत फेंको उन्हें नाली में,
मत डालो उनको कूड़े में !
मत जलाओ उनको ढेरों में,
सम्मान से दबाओ मिट्टी में!

दबकर भी मिट्टी में वह देगा,
खाद जिससे नव वृक्ष पलेगा !
निज जीवन को त्याग कर पत्ता,
नवजीवन का संचार करेगा !

यह जीवन पर्ण के जीवन जैसा,
वसंत के बाद पतझड़ है आता !
मत त्यागो आने पर जीवन संध्या,
थाम लो उन्हें जिनने तुम्हें है पाला !

—------

47.
प्रभु दर्शन

मंदिर के द्वार मैं खड़ा रहा,
उसके दर पर भीड़ बड़ी थी।
प्रभु के दर्शन करूँ मैं सोचा,
पर लोगों में होड़ मची थी।।

एक झलक प्रभु की पाने को,
लोग वहां पर तरस रहे थे!
प्रभु की कृपा -दृष्टि पाने को,
खुद को ही श्रेष्ठ समझ रहे थे!

कुछ सीढ़ी पर माथा टेकते,
कुछ मंदिर की दीवार को छूते!
आडम्बर के इन कामों से वे ,
प्रभु को खुश करने की सोचते!

मैं कतार में खड़ा रहा था,
प्रभु दर्शन की ले इच्छा मन में!
पीछे से जो लगा था धक्का,
छिटककर गिरा मैं प्रांगण में !

यूँ घूरा मुझे इक सज्जन ने ,
जैसे मैं हूँ तुच्छ इक कीड़ा!
फिर लगा वह ध्यान लगाने,
वह ध्यान जिसे मैंने तोड़ा !

छोड़ी आशा प्रभुदर्शन की,
निर्निमेष मैं देखता रहा उन्हें!
आंखें मूंद ध्यान लगाने की,
व्यर्थ की कोशिश जो कर रहे!

मंदिर में देखकर मूरत को ,
बाहर जो लोग निकल रहे ।
कृतकृत्य समझ वे अपने को,
आनंद विभोर हो झूम रहे!

बाहर एक भिक्षुक बैठा था,
कुछ पैसे वह माँग रहा था!
आँखें धँसी,पेट चिपका- सा,
आर्त हो सबको वह पुकार रहा !

कोई उससे मुँह फेर लेता ,
कोई डाँट लगाता उसको!
भूख से व्याकुल वह भिक्षुक था,
खाना कोई देता न उसको!

वह मंदिर था लक्ष्मीनारायण का,
सब मन ही मन लक्ष्मी को बुला रहे !
नर के रूप में नारायण जो बैठा,
दुत्कार उसे सब चले जा रहे !

मुझे लगा सच पूछो भइया,
नारायण से सबने मुँह फेरा !
डांटा उसे और नैवेद्य नहीं दिया,
भूखा रह गया वह नारायण मेरा!

मंदिर की सीढ़ियाँ उतरा मैं,
प्रभु का दर्शन कर न पाया!
जाकर उस भिक्षुक को मैंने,
भरपेट खिला कर तृप्त किया!

तृप्त हो चमकी आँखें उसकी,
मैंने उसमें प्रभु को देख लिया!
दुआ में उठे उन हाथों में ही,
मैंने प्रभु का आशीष पा लिया!

—------

48.
ईसा का आखिरी रात्रिभोज

जानते थे वे कि ,वह आखिरी रात है,
जानते विश्वासघाती एक उनके साथ है!
कर रहे थे भोजन वे , शिष्यों से गुप्त यह बात है,
जानते हुए भी प्रेम से , रोटी खिला रहे नाथ हैं!

गुरुवार की रात ,ईसा की आखिरी रात थी,
पर प्रेम में उनके कहीं, कमी नहीं आई थी!
ज्ञात उनको था ,सुबह कैसी होगी शुक्रवार की,
दुख को भी साहस न था, फिर भी उनको छूने की!

बारह शिष्यों के संग, ईसा बैठे थे भोज में ,
रोटी के टुकड़े तोड़ ,निज देह कहकर दे दिये!
मदिरा को अपना रक्त कह, पिलाया सबको उनने,
था ज्ञात भविष्य ईसा को, यह जाना था भला किसने?

जूडास इस्कैरियट नाम का, एक वह भी शिष्य था,
विश्वासघात करने की उसने ,षड्यंत्र भारी था रचा !
'मेरे मालिक' कह चूम ईसा को , वह संकेत दे दिया !
गुप्त सैनिकों को ईसा का ,सुराग उसने ऐसे दिया !

शुक्रवार को ईसा , सूली पर थे चढ़ गए ,
प्रेम का संदेश वे , दुनिया को थे दे गए !
अगले रविवार को , प्रकट फिर से वे हुए,
अमर होने का साक्ष्य ,जग को वे दे गए !

गुरुवार की वह रात , ईसा की आखिरी रात थी,
रोटी मदिरा देते हुए , कह गये जो गूढ़ बात थी!
ज्ञात उनको था कि घटना ,कल क्या होनेवाली थी ,
फिर भी प्रेम उनने जो बांटी, वह अनमोल इक सौगात थी!

—------

49.
रुकने का मतलब नहीं

रुकने का मतलब नहीं,
रुकना भी कहीं जीवन है?
क्या समय रुका है कभी,
नदियां रुकीं या रुकी धरती ही?

कभी ग्रहों की चाल रुकी है?
सूरज का उगना कभी रुका है?
बसंत का आना कभी रुका है?
पंछी का कलरव कभी रुका है?

दिन- रात का चक्र चलता रहता,
ऋतुओं का यह चक्र सदा चलता।
नव पल्लव का सृजन होता रहता,
नवजीवन का संचार सदा ही होता !

जल रुकता तो काई हो जाती,
पल रुकता तो प्रलय हो जाती!
जीवन रुकता तो मृत्यु हो जाती,
पथिक रुकता तो मंजिल न रह जाती !

चलते रहना ही जीवन है,
रुकना तो जीवन का अंत है!
तुम रुकोगे, जग आगे बढ़ जायेगा,
फिर वही जग तेरा उपहास करेगा !

तुम रुकोगे तो जग रुकेगा नहीं,
तेरे लिये कोई रुकेगा ही नहीं!
सृष्टि में अब तक कुछ रुका नहीं,
फिर तेरे रुकने का मतलब ही नहीं !

—------

50.
दादी की यात्रा

दादी तुम भी बच्ची थी ?
तुतलाती हुई मुन्नी पूछी ।
हां ,मैं बच्ची थी,तुझ जैसी ,
पोपले मुंह से दादी बोली !

नहीं , तुम बच्ची नहीं हो ,
तपाक से मुन्नी फिर बोली ।
दादी तुम तो दादी ही हो ,
तुम बच्ची कैसे हो सकती ?

दादी ने तब मुन्नी को सुनाई,
यात्रा दादी बनने तक की !
कितनी छोटी सी मुन्नी थी,
कैसे वह आज दादी कहलाती !

मैं भी तुझ जैसी छोटी थी ,
नाम भी था मेरा मुन्नी ही !
बड़ी हुई तो मां बनी थी ,
बूढ़ी आज मैं दादी हूं तेरी !

सुनकर मेरी तोतली बोली ,
मात-तात खुश होते थे कभी !
पकड़ कर मैं उनकी उंगली ,
धीरे -धीरे जब चलना सीखी !

आज तोतली हुई फिर बोली ,
हाथ किसी का पकड़ आज मैं चलती !
तब बचपन में मैं जैसी थी ,
बूढ़ी होकर आज फिर वैसी हो गयी !

—------

51.
बागवान

बागों में बहार है,
रंगबिरंगे फूल खिले हैं,
फूलों पर तितलियां मंडरातीं,
भौंरे मधु का पान हैं करते,
लोग सभी खुशियों से झूमते!

तरह तरह के वृक्ष खड़े हैं,
वृक्षों पर फल -फूल लदे हैं,
पंछी कलरव करते रहते,
डाल- डाल पर बसेरा करते,
दूर गगन में उड़ -उड़ कर फिर वे,
अपने नीड़ में लौट आते!

कहीं प्रफुल्लित बच्चों की ,
किलकारियां हैं गूंज रही!
कहीं प्रेमी युगल अपने ही,
सपनों की दुनिया में खोए!
दूर तरु की छाया में बैठे,
वृद्धजन अपनी बातों में खोए,
एक अकेला व्यथित हृदय कहीं,
बहारों में मन की शांति को खोजे!

बागों में बहार ऐसी है,
जो सबको खुशियां देती है!
सबके दुख को हर लेती है,
और खुशियां दे जाती है!

पर इस बाग की बहार के पीछे,
हाथ है किसका , कोई सोचा है?
सींचकर अपने श्रम के पसीने से,
वह निर्विकार बागवान बैठा है!

यह ब्रह्मांड भी इक बगिया है,
अनगिनत तारे और ग्रह ,फूल हैं इसके!
आकाशगंगाएं हैं सरितायें इसकी,
यह अद्भुत बाग बनाया किसने?

देख जिसे हम अचरज करते,
संचालन करता इसका कौन?
कौन है बागवान इस बाग का,
जो निर्विकार छुपकर बैठा है?

बागों की बहार सब देखते,
पर बागवान को नहीं पूछते!
बागवान यदि न होता तो,
ये बागें और बहार कहीं होती ?

ब्रह्मांड यह अनगिनत रहस्यों भरा ,
पर कौन है इसका सूत्रधार ?
सृष्टि को हम सब ही देखते,
पर नहीं खोजते इसका आधार!

—------

52.
अर्धसत्य

आधा सच कभी- कभी होता,
गुरुतर पूर्णसत्य और मिथ्या से !
जहां मिथ्या और सत्य न चलता,
अर्धसत्य बड़ा काम कर जाता!

कभी जब धर्मसंकट आ जाता,
और मिथ्या धर्मविरुद्ध ही होता,
जब सत्य से काम नहीं बन पाता,
तब अर्धसत्य ही आसरा होता!

स्वयं भगवान कृष्ण ने समझाया,
सत्य जब लोक को अहितकर होता,
सत्य न होकर भी अर्धसत्य वहां,
परम सत्य और धर्म कहलाता!

बालसमय जब मिट्टी खाई कान्हा ने,
मैया यशोदा ने पूछा -" मिट्टी खाई तुमने"?
"ना -ना " कह जब मुँह खोला कान्हा ने,
सारा ब्रह्मांड दिखा उस मुख में!

"मैं नहीं माखन खाया",कह कान्हा ,
अर्धसत्य ही यशोदा मैया से कहा!
ग्वालों के घर माखन खाया करता,
जग उसका तो माखन भी उसका!

कर्ण का जन्म भी रहस्य था बड़ा ,
सूतपुत्र होना उसका अर्धसत्य था!
सूत दंपति ने पालन किया उसका,
पर कौंतेय था,वह तो सूर्यपुत्र था!

कुरुक्षेत्र के युद्ध में गुरु द्रोण ने,
भीषण संहार जब मचा रखा था!
"अश्वत्थामा हतः",कह धर्मराज ने,
अर्धसत्य कह द्रोण को रण से हटाया!

मिथ्या हो पाप ,सत्य अहितकारी,
तब आधा सच ही होता हितकारी!
धर्म की रक्षा हेतु अर्धसत्य ही ,
होता समयोचित और मंगलकारी!

विशेष नोट एवं शब्दार्थ:

गुरुतर: अधिक भारी, बड़ा या अत्यधिक महत्वपूर्ण।

मिथ्या: झूठ या असत्य।

अर्धसत्य: आधा सच (वह स्थिति जहाँ कोई बात पूरी तरह झूठ न हो, लेकिन पूरा सच भी न हो)।

अहितकर: नुकसानदेह या कल्याण न करने वाला।

कौंतेय: कुंती का पुत्र (यहाँ यह शब्द महाबली कर्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो लोक-लाज के भय से कुंती द्वारा त्याग दिए जाने के कारण 'सूतपुत्र' कहलाए)।

सूत-दंपति: रथ हांकने वाले अधिरथ और उनकी पत्नी राधा (जिन्होंने कर्ण का लालन-पालन किया था)।

"अश्वत्थामा हतः": महाभारत के युद्ध का एक मुख्य प्रसंग। गुरु द्रोणाचार्य का वध करने के लिए भीम ने 'अश्वत्थामा' नाम के हाथी का वध किया था, जिसके

बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य से कहा— "अश्वत्थामा हतः, नरो वा कुंजरो वा" (अश्वत्थामा मारा गया, मनुष्य या हाथी)। युधिष्ठिर ने 'नरो वा कुंजरो वा' इतने धीमे स्वर में कहा कि द्रोणाचार्य सुन नहीं पाए और पुत्र-शोक में उन्होंने अस्त्र त्याग दिए। यही वह समयोचित 'अर्धसत्य' था जिसने धर्म की रक्षा की।

विरत: अलग होना, पीछे हटना या उदासीन हो जाना (रण से विरत होना यानी युद्ध बंद कर देना)।

समयोचित: समय के अनुकूल या परिस्थिति के अनुसार जो सही हो।

—------

पंचम सर्ग
कला ,संस्कृति और शब्द-शिल्प

53.
करुणा

जिसके हृदय में रहती करुणा,
वह भगवान का मंदिर होता!
होती न जिस हृदय में करुणा,
लगती वह प्राणहीन -सी काया !

करुणा हृदय की अमृतधारा,
संचार करे प्राणों का सबमें !
दुख दूर कर शांति वह देती,
दीन हीन नर औ' प्राणी में !

शोकाकुल हो नर के वध से ,
मादा क्रौंच विलाप कर रही!
करुणार्त वाल्मीकि के मुख से ,
फूट पड़ा इक श्लोक तत्क्षण ही!

वाल्मीकि आदिकवि बने तब ही,
करुणा की धार -सी बह चली!
करुण दृश्य ने कवि को जगाया,
रचित हुई रामायण तब ही !

सिद्धार्थ सुकुमार राजकुमार थे ,
राजसुख ,सुविधा और भोग थे!
वृद्ध,रुग्ण, मृत व्यक्ति को देख वे,
अरुण -हृदय वे तप करने चले !

सुन करुण पुकार द्रौपदी की ,
तत्क्षण कृष्ण ने रक्षा की उसकी!
चीर बढ़ाकर सखी कृष्णा की ,
भरी सभा में उसकी लाज बचाई !

करुणा दैवीगुण इक ऐसा,
सदा ही सबकी रक्षा करता।
हिय में जिसके होती है करुणा ,
ईश्वर का वास वहाँ है होता ।।

—------

54.
अनोखी चित्रकारी

हाथ में तूलिका एक लिये,
उकेरता इक चित्र वह ऐसा!
देखे कभी कोई तो लगे ,
मानों जीवंत वह हो उठेगा !

कई अनोखे चित्रकार हुए,
अद्भुत थी चित्रकारी उनकी!
भावों को वे मूर्त - रूप दे,
चित्र उकेरते वे जीवंत- से!

राफेल,लियनार्डो दा विंची,
रूसो और माइकेल एंजेलो,
साल्वडोर डली ,बॉटिसेली,
वैन गॉग, मॉनेट ,पिकासो !

राजा रविवर्मा हुए महान चित्रकार ,
जामिनी राय और तय्यब मेहता !
हैदर रज़ा , अमृता शेरगिल ,
जतीन दास और मनजीत बावा !

नंदलाल बोस,फ्रांसिस सूज़ा,
इला मेनन, अकबर पदम्सी!
वैकुंठम् औ' किशनजी आरा,
रवीन्द्रनाथ , अवनींद्रनाथ भी!

लियोनार्डो की ' **मोनालिसा'**,
रहस्यमयी मुस्कान है उसकी!
देखें जहां से भी वह चेहरा,
लगता है वह हमें ही देखती!

ईसा का आखिरी रात्रि -भोज ,
बैठे थे वहां कुल तेरह जन !
द्रोह किया था एक उनमें ही,
लियोनार्डो दा विंची की अद्भुत कृति थी !

चित्रित किया जो **माइकेल एंजेलो** ने
वह तो एक अनमोल दृश्य था!
अपने उंगली के स्पर्श मात्र से ईश्वर ने,
आदम में जीवन का संचार किया!

राजा रवि वर्मा चित्रकार महान थे,
अद्भुत थी चित्रकला उनकी!
अंकित कर दी उनने सबके हिय में,
देव-देवियों की छवि अनोखी!

चित्रकला है एक साधना-सी,
चित्रकार एक साधक जैसा।
विरंचि की सृष्टि जैसी अनोखी,
अद्भुत कला-सृष्टि वह करता।।

कितने ही चित्रकार हुए हैं ,
अपने देश और विदेश में!
अद्भुत उनकी वह चित्रकला है,
नमन है उनको अंतर्मन से ।।

—-------

55.
पुस्तकालय में प्रेम

अगणित ग्रंथों से सुसज्जित,
मंदिर भव्य है वह ज्ञान का !
सागर जितनी उसकी गहराई,
निधि है वह अमूल्य रत्नों की!

वह था भव्य महाविद्यालय,
जहाँ पुस्तकालय था अनुपम!
यहीं प्रेम मेरे मन में उपजा,
जीवन में वह था सुंदरतम !

चाहत उपजी थी मेरे हिय में,
उन अमूल्य पुस्तक निधि की!
प्रेम का अंकुर हुआ प्रस्फुटित,
हुई पल्लवित लता प्रेम की!

प्रेम हुआ मुझे प्रेमचन्द की ,
उन सब प्रेरक रचनाओं से !
मैथिलीशरण,प्रसाद, निराला,
दिनकर और **पंत** के काव्यों से!

हुआ मुग्ध मैं भक्ति काव्य से,
उन प्रेरक रचनावलियों से!
भक्ति काव्य **तुलसी,सूर** की,
रहीम और **कबीर** के दोहों से!

कितनों के मैं नाम गिनाऊँ,
हिंदी के उन कविगण का!
हर युग में की सेवा इसकी,
पद्य औ' गद्य का माला गूंथा!

प्रेम हुआ मुझे कवि **रवीन्द्र** के,
संगीत भरे उन काव्यों से !
देशप्रेम युत **बंकिम चन्द्र** की,
और **शरतचन्द्र** की रचनाओं से!

शेली, कीट्स, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ,
डिकेन्स,लैम्ब हो या शेक्सपियर!
कितनी अमूल्य रचनायें हैं उनके सब,
अमिट छाप छोड़ें वे वह हिय पर!

अथाह ज्ञान का सागर है यह,
साहित्य, विज्ञान औ' राजनीति का !
वाणिज्य ,गणित या अर्थशास्त्र हो,
ज्योतिष हो या खगोल शास्त्र का !

प्रेम हुआ मुझे पुस्तकालय में,
इन अमूल्य अगणित ग्रंथों से !
घंटों निमग्न बैठा रहता हूं मैं,
उन सुंदर रचनाओं की संगत में !

—------

56.
गांधर्व और राक्षस विवाह

विवाह के अष्ट विधान हैं शास्त्रों में,
गांधर्व और राक्षस विवाह विधान भी हैं उनमें !
दो प्रेमी वचनबद्ध अगर हो,वह विवाह गांधर्व विवाह कहलाता,
अपहरण हो जहां ,वह राक्षस विवाह है कहलाता!

आज ही नहीं , आदि काल से ही,
गांधर्व विवाह सदा से होते आये!
छोड़ो बात आजकल के विवाह की,
तब के विवाहों की कथा हम सुनाते!

गांधर्व विवाह होता प्रेम जनित ही,
यह विवाह करते आये आदि से ही !
शिव -पार्वती, शांतनु- गंगा ने की,
दुष्यंत -शकुंतला, ऊर्वशी- पुरुरवा भी!

बलराम चाहते ब्याह सुभद्रा की,
हो अपने शिष्य दुर्योधन से ही!
अर्जुन ने कृष्ण के कहने पर तभी,
हरण कर सुभद्रा से राक्षस- विवाह की!

भीष्मकपुत्री रुक्मिणि का हरण कर
कृष्ण ने भी तो राक्षस विवाह रचाई !
शिशुपाल से विवाह होना था पर,
हरण कर कृष्ण ने ब्याह रचा ली !

अब कृष्णपुत्र सांब की बात भी सुन लो,
किया प्रेम उसने दुर्योधन की पुत्री से !
कृष्णद्वेषी और पांडवद्रोही दुर्योधन को,
श्वसुर बनाकर ब्याह रचाई लक्ष्मणा से !

सुनो अब यदुवंशी अनिरुद्ध की कहानी,
कृष्ण का पौत्र वह ,पुत्र वीर प्रद्युमन का!
प्रह्लाद -कुल में जन्मी राजा बलि की पौत्री ,
राक्षसराज बाणासुर की पुत्री थी उषा!

देखा जब अनिरुद्ध को उषा ने स्वप्न में ,
हो गया तत्क्षण ही, प्रेम उसे यदुवंशी से !
कहकर अपनी सखी चित्रलेखा से ,
अपहरण कराकर ब्याह रचाई उसने!

गांधर्व हो या राक्षस विवाह, यह हर युग में होता रहा !
एक पक्ष जयी होता,तो होता पराजय दूजे का !
स्थिति गति किसी के वश में कभी नहीं होता,
कालक्रम में वही घटना इतिहास बन जाता!

—------

57.
अगर शब्दों के पंख होते

अगर शब्दों के पंख होते,
तो फिर मेघदूत ही न होता!
विरह -काव्य तब रचे न होते,
न उद्धव -गोपी संवाद ही होता!

न होती तब प्रेम की पाती,
शब्द पंख पसार उड़ जाती!
न तड़पन की घड़ियां होती,
न प्रेम की अनुभूति ही होती!

शब्दों का तब मोल न होता,
न ही प्रेम विरह उपजाता!
पाती का कोई काम न होता,
न प्रेमियों से उसका होता नाता!

प्रेमी का तब चिंतन न होता,
न ही चिंता होती उसकी !
मन के भाव का मोल न होता,
न ही प्रतीक्षा होती उसकी !

अपना हाल बताने को प्रेमी,
मेघों का सहारा ही न लेता!
न ही नल -सा कोई प्रेमी,
प्रेमपत्र हंस से ही भिजवाता!

अगर शब्दों के पंख होते,
दुर्भाव शत्रु तक पहुंच जाता !
फिर नित रक्तपात ही होते,
युद्धों का कभी अंत न होता!

शब्दों को पंखहीन ही रहने दो,
पाती को भी अमूल्य रहने दो!
पाती ही सचमुच मन को भाती,
प्रेमियों की वह होती है थाती !

—------

58.
आखिरी दिन था वह महाभारत का

आखिरी दिन था वह महाभारत का ,
दृश्यों का आखिरी चित्रांकन होना था!
सभी पात्रों में विषाद था, वियोग का दुख था!
सभी किरदारों को आज बिछुड़ना था!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

कुछ पात्र वेश धारण किए हुये थे!
कुछ निजरूप में ही वहाँ खड़े थे!
निर्माता निर्देशक उनको निर्देश दे रहे थे,
किसे कैसा अभिनय करना है ,बता रहे थे!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

अभिनय पर मन केंद्रित नहीं हो रहा ,
सभी पात्रों का मन भारी हो रहा था!
कोई दुख से बरबस आँसू बहा रहा था ,
कोई भारी मन लिए उसे समझा रहा था!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

रो रहे थे वे **अर्जुन** ,'**अर्जुन**' वेश धारण किए ,
आंखों से अविरल अश्रु उनके बह रहे थे !
नीतीश भारद्वाज भी थे ,वहाँ कृष्ण-वेश धारण किए ,
अर्जुन को सदा की तरह सांत्वना दे रहे थे !
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

गूफी पेंटल भी नजर आए वहाँ!
साफ था मुखमंडल ,सात्विकता थी चेहरे पर उनके!
न द्वेषभाव था ,न ही शकुनि की कुटिलता,
मिल रहे थे सबसे वे भी भारी मन लिए!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

आए थे वहाँ **मुकेश खन्ना** भीष्म का रूप धरने,
सबसे मिलकर आखिरी बार वेश धरा था भीष्म का!
दिख रहा भारी विषाद मुस्कान की ओट में,
आज सचमुच व्यथित मन था उनका भीष्म -सा!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

द्रौपदी बनकर आई **रूपा गांगुली** भी,
आँखों में अब उसके थे सच के आँसू ही!
वह चुलबुली -सी आज जो आई थी,
बनकर द्रौपदी वह सचमुच आँसू बहा रही थी!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

वीरेंद्र राजदान विदुर बन खड़े थे!
मुखमंडल शांत था पर मन था उनका भारी!
सौम्य विदुर सबसे गले मिल रहे थे,
अंगोछे से आँसू पोंछ रहे थे बारंबार ही!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

धर्मराज युधिष्ठिर के रूप में सजे हुए,
गजेन्द्र चौहान भी थे वहीं खड़े !
युधिष्ठिर का वह धीरोदात्त रूप लिए,
निज विषाद रोके सबको आश्वस्त कर रहे!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

कितने कलाकार थे, कारीगर थे कितने!
कितना भारी था मन ,ये वे ही जाने!
कलाकार मिल रहे थे रंगमंच कर्मियों से,
वे सारे कर्मी भी आज दुख से सराबोर थे!
आखिरी दिन था वह महाभारत का!

कौन कहता वह आखिरी दिन था ?
अमर हो गया वह दिन जीवन में उनका!
भुला नहीं पाएँगे उसे वे सर्वदा,
याद रहेगा वह दिन उनके मानस में सदा!
आखिरी दिन कहाँ था वह महाभारत का ?

(**विशेष नोट -** यहां तीसरे बंद में 'अर्जुन ' शब्द संदर्भानुसार अभिनेता फिरोज़ खान के पटनाम ' अर्जुन ' कभी उनका किरदार 'अर्जुन ' और कभी महाभारत के पौराणिक पात्र अर्जुन के लिए उपयोग किया गया है।)

—------

59.
एक लेखक का सपना

सबका ही है होता सपना,
होता है अति प्रिय वह अपना।
होती वह सुंदर सी कल्पना,
अंतर्मन के भावों की रचना।।

होता लेखक का भी सपना,
हो सुंदर, सुखी जग यह अपना।
अत्याचार, शोषण और हिंसा,
दुराचार बिन जग हो अपना।।

मन में कवि कोमल भाव लिये,
जग की मंगल कामना करता।
हिंसा, पाप, व्यभिचार जो दिखे,
मन क्रंदन उसी का है करता।।

पिघल गया हृदय "**निराला**" का,
देखा जब " **वह तोड़ती पत्थर**" थी!
इलाहाबाद के पथ पर जब,
झुलसाती हुई उठी लू थी!

द्रवित हुआ हृदय "**निराला**" का,
देखा जब आता पछताता!
"**भिक्षुक**" वह मुट्ठी भर दाने को,
भूख मिटाने को था आता!

देख समाज की विगलित दशा,
प्रेमचंद का दिल पसीज उठा!
"**बूढ़ी काकी", "कफ़न"** दिखाते,
लाचारी व स्वार्थ समाज का!

निज देश की दीन दशा देख,
"**कुरुक्षेत्र**" से "**हुँकार**" वे किये!
"**समर शेष है**", कह वे "**दिनकर**",
"**परशुराम की प्रतीक्षा"** करे!

लेखक के सपने प्रस्फुटित हो,
राह दिखाते हैं हम सबको।
बढ़कर उस राह पर हम सब,
साकार करें उन सपनों को।।

शब्दार्थ-१)क्रंदन=रोना,२)निराला=हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी"निराला" ३)"वह तोड़तीपत्थर","भिक्षुक"=महाकवि "निराला" की प्रसिद्ध कवितायें,४)प्रेमचन्द= हिंदी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार,५) "बूढ़ी काकी","कफन"=प्रेमचन्द की रचनाएं, ६)"कुरुक्षेत्र","हुँकार","समर शेष है","परशुराम की प्रतीक्षा" =श्री रामधारी सिंह" दिनकर" की प्रसिद्ध रचनायें,७)"दिनकर"= हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह "दिनकर"।

—------

60.
हे राम! हमें ‘दिनकर’ लौटा दो!

उदित हुए तुम हे 'दिनकर',
साहित्यलोक के गगन पर ।
सन् उन्नीस सौ आठ संवत्सर,
वह दिन था तेईस सितम्बर!

राम -सा ही 'रामधारी' तुम थे ,
उदित हुए अधर्म का नाश करने !
लेखनी -रुपी कोदंड ले हाथ में,
दनुज- वन का विनाश करने चले !

गद्य, निबंध और कविताएँ,
तुम्हारे अक्षय तूणीर में सोहते!
परतंत्रता की बेड़ियाँ काटने,
रामबाण बन वे लक्ष्य बेधते!

'इतिहास के आंसू' जब देखे,
द्रवित हुआ मन 'दिनकर' का!
बन प्रचंड मार्तण्ड के जैसे,
बिखेरी किरणें 'रश्मिरथी' सा!

आज फिर बाट जोह रही,
भारत माता की 'आत्मा की आंखें'!
'परशुराम की प्रतीक्षा' वह कर रही,
अधर्म मिटाने जो 'हुंकार' भरे!

'कुरुक्षेत्र' आज फिर रणक्षेत्र बन गया,
धर्म को हराने फिर उद्यत है कौरव सेना!
आ गया समय फिर एक बार यहाँ,
उपदेश करे कोई ' दिनकर की सूक्तियां'!

आओ 'दिनकर' एक बार फिर आओ!
अन्याय, अधर्म के विरुद्ध आवाज उठाओ!
पतनोन्मुख जन मानस में अलख जगाओ!
निज देश से विमुख जनता को राह दिखाओ!

हे राम! हमें 'दिनकर' लौटा दो!
छाया घोर तिमिर आज देश में !
माता 'रेणुका' को फिर परशुराम दे दो!
जो फिर उन्मुक्त करे इस देश को!

(२४ अप्रैल को 'दिनकर ' जी के पुण्यतिथि पर सादर समर्पित)
(कोष्ठक में शब्द 'दिनकर ' जी की रचनाओं के नाम हैं।)

—------

61.
कौन सुने कवि का क्रंदन !

कौन सुने कवि का क्रंदन !
कवि जो मन बहलाता सबका,
गगन विहार उनको करवाता,
मधुर कल्पना के झूले झुलाता,
भौंरे सा जो गुन गुन करता,
कभी कभी वह भी क्रंदन करता!

कौन सुने कवि का क्रंदन !

अलकापुरी से निष्कासित हो,
वह यक्ष विरह से पीड़ित था !
मेघ को अपना दूत बनाकर ,
विरह व्यथित संदेशा भेजा !
यक्ष के दुख से स्वयं व्यथित हो,
कवि भी उसके संग रोया था !

कौन सुने कवि का क्रंदन !

दमयंती के विरह में जब,
राजा नल आंसू बहाया था !
पीड़ा नल की देख कवि ने,
उस पीड़ा में स्वयं को देखा!
चुपके से आंसू बहाता था,
नल के संग वह भी रोया था!

कौन सुने कवि का क्रंदन !

क्रौंच के जोड़े के वध से,
हृदय से दुख जब उमड़ पड़ा!
दुख मिश्रित होकर करुणा से,
उसका आक्रंदन फूट पड़ा !
प्रथम काव्य वह कवि का,
रामायण बन प्रकट हुआ !

कौन सुने कवि का क्रंदन !

पंचवटी में जब रावण ने,
सीता को हर कर ले गया !
वन के वृक्ष , पशु -पक्षी से,
पूछ पूछ कर राम था रोया !
व्याकुल हो तब राम के दुख से,
कवि भी उसके संग रोया था!

कौन सुने कवि का क्रंदन !

इंदुमती जब स्वर्ग सिधारी,
अज के संग वह भी रोया था !
शूरवीर कर्ण जब हत हुआ था,
कुंती के संग वह भी रोया था !
पांडवपुत्रों को अश्वत्थामा ने जब मारा,
द्रौपदी संग वह बहुत रोया था !

कौन सुने कवि का क्रंदन !

कवि जब निज दुख से रोता,
उसके दुख को कौन देखता ?
जो सबके दुख में रोया था ,
कौन भला उसके संग रोता ?
किसके हृदय में होता स्पंदन?
क्रंदन उसका होता अरण्यरोदन!

कौन सुने कवि का क्रंदन !
कौन सुने कवि का क्रंदन !

शब्दार्थ-

क्रंदन: रोना, विलाप, हृदय की गहरी पुकार।

गगन विहार: आकाश की सैर (यहाँ अर्थ है कल्पना की ऊंचाइयों में उड़ना)।

अलकापुरी: कुबेर की नगरी, जहाँ से यक्ष को देश निकाला (निष्कासित) मिला था।

विरह व्यथित: अपनों से बिछड़ने के दुख से पीड़ित।

क्रौंच: एक प्रकार का पक्षी (जिसके जोड़े में से एक की हत्या देखकर वाल्मीकि के मुख से रामायण का पहला श्लोक फूटा था)।

अरण्यरोदन: जंगल में बैठकर रोना (ऐसा विलाप जिसे सुनने वाला कोई न हो, निष्फल प्रयास)।

स्पंदन: धड़कन, दिल का पसीजना या किसी के दुख से प्रभावित होना।

—------

62.
वो मुझे छोड़ कर चली गई

आख्यान कई हम सुनते आये,
विरहाकुल अबला नारी की!
हैं पुरुष कई जो बिलख पड़े,
वो मुझे छोड़कर चली गई!

नारी ही है नहीं विरहिणी,
पुराण पुरुष हुए कितने ही!
विरह में जो बिलख पड़े कभी,
वो मुझे छोड़कर चली गई!

निर्वस्त्र देख जब पुरूरवा को,
छोड़ उसे ऊर्वशी स्वर्ग को चली !
रोने लगे वे तब दुख में कातर हो ,
वो मुझे छोड़कर चली गई!

देवलोक का पुष्प गिरने से,
इंदुमती ने देह जब त्यागी!
दशरथ-जनक अज लगे तब रोने ,
वो मुझे छोड़कर चली गई!

रघुवीर राम भी तब रोये थे,
जब सीता अवनि में समाई थी!
कातर हो वे भी बिलख पड़े ,
वो मुझे छोड़कर चली गई!

राजा शांतनु विकल हुये थे,
जब गंगा उनको छोड़ चली!
व्याकुल होकर तब बिलख पड़े,
वो मुझे छोड़कर चली गई!

कितनी ही गाथायें ऐसी ,
विरह में रोये सच्चे प्रेमी!
कातर हो लगे रोने वे सभी,
वो मुझे छोड़कर चली गई!

—------

63.
कैकेयी का अंतर्द्वंद्व

बेटी तुम राजा अश्वपति की,
कैकेयी तुम सुंदर सुकुमारी !
दशरथ को प्राणों से प्यारी,
कैसी यह विडम्बना भारी ?

जब युद्ध हुआ संबरासुर से,
दशरथ के प्राण बचाये थे !
जो पाया था दो वर तुमने ,
कारण बने वही तेरी निंदा के!

कहने पर मंथरा दासी के ,
तूने वर दशरथ से मांगा!
भरत को राजसिंहासन मिले,
राम को वनवास है जाना !

राम चले वनवास तुरन्त ही,
हुई कहानी रामायण की!
युग युग जनता तुझे कोसती,
पीड़ा क्या जाने वो तेरी!

राम भरत से प्यारे तुझको,
बात गूढ़ यह जग क्या जाने!
स्वार्थी और हठी कह तुझको,
जग यह सदा लांछित ही करे !

पुत्र -वियोग में शाप जो दिया,
श्रवण के वृद्ध जनक-जननी ने!
दशरथ को वह होना ही था,
राम को उनसे बिछुड़ना था!

अगर न तूने वर माँगा होता ,
तो क्या वनवास राम को होता?
अगर राम राजा होते तो,
पुत्र वियोग दशरथ को होता?

अगर शाप को सच होना तो,
फिर राम की मृत्यु होना था!
भेजा जो वन में तुमने तो,
राम को तूने जीवनदान दिया!

राम की प्रिय माता हो तुम ही ,
हर बार राम ने कहा था यही!
धन्य हो तुम उस लाल की माई,
जिसने जना भरत -सा भाई!

धन्य हो ,तुम माता कैकेयी!
भरत- सा पुत्र दिया जग को !
माता हो तुम सदा राम की,
सदा वंदनीय जग में तुम हो!

विशेष नोट - इस कविता में एक बहुत ही गूढ़ आध्यात्मिक और तार्किक सत्य को उजागर किया गया है कि यदि श्रवण कुमार के माता-पिता का शाप सच होना था, तो दशरथ को पुत्र-वियोग में मरना ही था।यदि राम अयोध्या में ही रहते, तो राजा होने के कारण वे पिता से अलग नहीं होते। ऐसे में शाप पूरा होने के लिए राम की मृत्यु भी हो सकती थी।कैकेयी ने राम को वन भेजकर दशरथ का शाप भी पूरा करवा दिया और राम को जीवनदान भी दे दिया।यह

अनूठा विचार पाठकों को कैकेयी के प्रति घृणा के भाव को छोड़कर आदर का भाव लाने पर मजबूर करता है।

शब्दार्थ -

सुकुमारी=अत्यंत कोमल और सुंदर स्त्री,
विडम्बना= विपरीत परिस्थिति ,उपहास या दुर्भाग्य
संबरासुर = एक पराक्रमी राक्षस, जिसके साथ युद्ध में कैटेगरी ने दशरथके प्राण बचाए थे।
लांछित= बदनाम, जिस पर कलंक लगा हो।

—------

षष्ठम सर्ग
आध्यात्म और पौराणिक गाथायें

64.
त्रिपथगामिनी हे गंगे !

त्रिपथगामिनी हे गंगे !
तुझको है बारम्बार नमन !
भगीरथ के तप के फल से,
भू पाताल को तुमने किया पावन!

हरि के चरणों से निकली,
शिव के सर पर तुम विराजी!
हिमालय की गोद में खेलती,
हरिद्वार ,काशी होकर चली!

जहां जहां चले भगीरथ,
तुम उसके पीछे ही चली!
भूमंडल को करती हुई पावन ,
तुम पाताल लोक तक गयी !

स्वर्ग मर्त्य पाताल लोक में,
बहती गई तुम त्रिलोकपावनी !
त्रिपथगा नाम सार्थक करती,
भागीरथी नाम से विख्यात हुई ।।

हर की पौड़ी हरिद्वार से,
तू काशी शिवधाम चली!
फिर प्रयाग हो गंगासागर में ,
सागर में जाकर तुम मिली!

फिर भगीरथ संग पाताल चली ,
कपिल मुनि के आश्रम तुम आई!
वहां सगरसुतों के भस्म पर बही,
मोक्ष दी तुमने उन सबको ही !

आज अवतरण हुआ है तेरा।
पावन यह दिन गंगा दशहरा !
कोटि कोटि नमन तुझको मेरा ,
सुर सरिता पावनी हे गंगा !

(गंगावतरण दिवस पर भक्तिमय समर्पण)

—------

65.
नमामि गंगे

नमः सुरसरिते, नमामि गंगे!
हे भवतारिणि , त्रिपथगामिनी!
अच्युतचरण -तरंगिणी गंगे!
मोक्षप्रदा सगरसुत- तारिणी !

भगीरथ ने तुझको भू पर लाया,
सगरसुतों को मोक्ष दिलाया!
अति पावन हुई यह धरा हमारी,
मोक्षप्रदायिनी हो तुम गंगे !

अच्युत के चरण से तुम निकली,
शिव के शीश पर तुम विराजी!
हिमवान के गोद में खेलती,
वसुंधरा के गोद में तुम पलती!

आदिकाल से तुम वंदित हो ,
देव ,मुनि, मानव से पूजित हो!
पापपुंज का प्रक्षालन करती ,
परम पावनी तुम गंगा माई!

अति पापी आज मनुज हो गया ,
बहुविध तुझको वह प्रदूषित करता!
विनष्टबुद्धि हो वह ऐसा हो गया ,
वर्जित और विष पदार्थ तुझमें बहाता!

हिमवानसुता तुम श्वेता थी,
धवलवर्ण कांतिमयी भासती!
आज हरितवर्णा तुम हो गई,
हम मनुजों से तुम रुष्ट हो गई!

जीवनदायिनी है माँ गंगा ,
स्वच्छ, पवित्र इसे है रखना।
मातृ -अंक को जो कलुषित करता,
विनाश का आह्वान वह करता।।

क्षमा करो हमें माते गंगे!
रुष्ट न हो तुम अपनी संतान से!
सद्बुद्धि हमें दो माते गंगे!
नमामि गंगे त्वम् नमामि गंगे!

<u>विशेष नोट एवं शब्दार्थ:</u> सुरसरिते: देवताओं की नदी (गंगा जी का एक नाम)।

भवतारिणि: संसार रूपी सागर से पार उतारने वाली, मोक्ष देने वाली।

त्रिपथगामिनी: तीन पथों (आकाश, पृथ्वी और पाताल) में बहने वाली नदी।

अच्युतचरण-तरंगिणी: भगवान विष्णु (अच्युत) के चरणों से निकलने वाली तरंगों वाली नदी।

सगरसुत-तारिणी / सगरसुतों: राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार करने वाली। पौराणिक कथा के अनुसार, भगीरथ ने अपने पूर्वजों (सगर के पुत्रों) की आत्मा की शांति और मोक्ष के लिए गंगा को पृथ्वी पर लाने की घोर तपस्या की थी।

हिमवानसुता: हिमालय की पुत्री।

पापपुंज: पापों का समूह या ढ़ेर।

प्रक्षालन: धोना या पवित्र करना।

विनष्टबुद्धि: जिसकी बुद्धि नष्ट या भ्रष्ट हो गई हो।

मातृ-अंक: माता की गोद।

आह्वान: पुकारना या न्योता देना (यहाँ 'विनाश को आमंत्रण देने' के संदर्भ में)।

—------

66.
हम साथ साथ हैं !

कभी न प्रभु तुम हमें भूलना,
बसो सदा तुम मेरी सांसों में!
इतना करो प्रभु कि मुझे सदा,
याद रहे हम साथ- साथ हैं!

सुना मैंने कि तुम उन सबके ,
सदा से ही साथी हो सच्चे ।
तन मन धन से निज को जिसने,
अर्पण की ,तुम हो गये उसके।।

लाज रखी है भरी सभा में ,
सखी द्रौपदी की तब तुमने!
पाकर निज को दीन- हीन सी,
आर्त पुकारी थी जब उसने!

दीन सुदामा दर पर आया,
सुन नंगे पांव दौड़े आये !
दुख हरकर तब बालसखा का,
दीनबन्धु तुम हो कहलाये!

बनकर रथसारथी अर्जुन के,
तुम पार्थसारथी कहलाये !
देवी कुंती चाहती कष्ट मिले,
दुख में ही तुम याद जो आते!

मैं अबोध नहीं जानता कैसे,
अर्चन पूजा करूँ तेरी मैं!
सखा मैं बनूँ उन सब जैसे ,
कह सकूं कि हम साथ-साथ हैं!

—------

67.
क्या तुम मेरे सखा बनोगे?

सुना मैंने मित्रता तुम्हारी,
सदा अलौकिक ही होती ।
मित्रवृंद हैं तेरे कितने ही ,
जिनकी तूने नैया पार लगायी।।

सुग्रीव ने की मित्रता तुमसे,
तूने किष्किंधा का राज दिया!
आया शरण विभीषण तो ,
कह मित्र उसे लंकेश बनाया!

दीन सुदामा दर पर आया,
सुन नंगे पांव तुम दौड़े आए!
निज हाथों से तुमने धोया,
धूल-धूसरित पावों को उसके !

गले लगाकर मित्र को तुमने,
उसके दुख सारे ही हर लिए!
मुट्ठीभर चावल खाकर तुमने,
ऐश्वर्य स्वर्ग -सा दे दिया उसे!

लाज रखी तुम भरी सभा में ,
सखी द्रौपदी की तब तुमने!
आर्त हो पुकारी जब उसने,
चीर बढ़ाई थी तब तुमने !

बनकर सारथी अर्जुन के,
पार्थसारथी तुम कहलाये !
बनकर दास निज भक्तों के ,
दासों के तुम दास कहलाते!

मैं न सुदामा ,अर्जुन जैसा,
ना मैं सखी द्रौपदी -सा ही !
सखा बनाकर तुम मुझको भी ,
रखो तुम्हारे निकट सदा ही !

सखा नहीं प्रभु कोई जग में,
क्या तुम मेरे सखा बनोगे?
बन सखा तुम सदा यह कहना,
सख्य कभी यह नहीं तोड़ोगे!

—------

68.
गुमनाम भक्त

कितने ही भक्त हैं प्रभु तेरे,
पार्षद और वंदीजन कितने !
प्रह्लाद,नारद,पाराशर से,
पुंडरीक ,व्यास,शुक ,शौनक जैसे!

अंबरीष,भीष्म, और रुक्मांगद ,
अर्जुन वशिष्ठ और विभीषण हैं!
इन सब भक्तजनों के सामने ,
द्वार तेरे गुमनाम हूँ मैं!

दो भक्ति **अंबरीष रुक्मांगद** जैसा,
प्रह्लाद ,नारद व पुंडरीक- सा!
स्मरण करूं तुझे **भीष्म ,वशिष्ठ**-सा,
पाराशर,व्यास,शुक शौनक -सा।।

सख्य दो मुझे तुम **अर्जुन** जैसा,
दास्य दो मुझे **विभीषण** -सा!
परम भागवत उनके जैसा,
मुझे बनाओ पार्षद तेरा !

करूँ गान मैं **नारद** जैसा,
नाम जपूँ **प्रह्लाद** के जैसा!
करूँ मित्रता **अर्जुन** के जैसा,
करूँ वंदना **विभीषण** जैसा!

गिनती मेरा हो, मैं न चाहूँ ,
उन परम भागवत लोगों में!
गुमनाम ही सही पड़ा रहूँ ,
मैं सदा तुम्हारे चरणों में!

शब्दार्थ

वंदीजन: स्तुति करने वाले, यशगान करने वाले भक्त।
परम भागवत: भगवान विष्णु या कृष्ण के परम और श्रेष्ठ भक्त।
सख्य: सखा या मित्र का भाव (जैसे अर्जुन का कृष्ण के प्रति था)।
दास्य: सेवक या दास का भाव (जैसे विभीषण और हनुमान जी का राम के प्रति था)।

—------

69.
फूलों की सुगंध

फूलों की सुगंध क्या देती,
क्या तुमने कभी सोचा है?
मन बहलाती और साथ ही,
बड़े कार्य कर जाती है!

नारद **पारिजात** दी कृष्ण को,
गंध बड़ी अलौकिक थी जिसकी!
कृष्ण ने जो दी उसे रुक्मिणी को ,
क्रोधित हुईं सत्या तत्काल ही!

असहाय कृष्ण क्या कर सकते?
स्वर्ग से पारिजात स्वयं वे लाए!
सत्या के भवन में रोपा जो उसे ,
जग को वह दिव्य पुष्प दे गए!

पाई जब सुगंध दिव्य कमल की ,
द्रौपदी मचल गईं उसको पाने!
चले भीम दिशा **गंधमादन** की,
दर्शन दिये जहां अग्रज **हनुमान** ने !

जब **भीमसेन** ने शीश नवाया,
प्रेम से **हनुमान** ने उन्हें गले लगाया!
कहा सदा तेरे ही साथ रहूंगा,
पार्थ के रथ के **ध्वज** पर बैठूंगा!

फूलों की सुगंध अति निराली,
क्लांत मनुज को विश्राम देती!
रोगी को वह आराम देती,
अपनों को वह खुशियां देती!

फूलों की सुगंध अति न्यारी ,
खुशियां सदा वह देती है !
कभी- कभी सुगंध फूलों की ,
एक इतिहास ही रच देती है ।।

शब्दार्थ - १) पारिजात - स्वर्ग में इंद्र के उद्यान का एक दिव्य पुष्प।
२) गंधमादन - हिमालय के कैलाश पर्वत के उत्तर स्थित एक दिव्य पर्वत। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार हनुमानजी कलियुग में यहीं रहते हैं। महाभारत काल में जब भीम दिव्य कमल लाने इस गंधमादन पर्वत पर गये तब उनको हनुमानजी मिले और उन्होंने भीम को आशीर्वाद दिया कि वे सदा अर्जुन के ध्वज पर विराजमान रहेंगे।

—------

70.
मृत्युंजय

हुए कितने ही इस जग में
चरित बड़े निराले उनके!
नहीं डरे वे कभी काल से,
मृत्यु को झुका दिया उनने!

हुई पतिव्रता सती सावित्री,
जीता जिसने काल को भी!
यम से लड़कर वह वर पाई,
सत्यवान को साथ ले आई!

मृकण्डुपुत्र वह मार्कंडेय हुआ,
सोलह वर्ष की जिसे आयु मिली !
पिता से जानकर तब वह चला,
करने प्रसन्न शिव को तत्क्षण ही!

नियत समय पर मृत्यु जब आया,
लेने उसे यमराज प्रकट हुए !
भयकंपित मृकंडुसुत ने जकड़ा,
शिवलिंग को बाहुपाश में अपने!

भग्न हुआ पाश जो डाला यम ने ,
रौद्र रूप धर शिव प्रकट हुये!
लौटे यम तब शिव की आज्ञा से,
मार्कंडेय तब चिरंजीव हो गये !

युधिष्ठिर ने जब सहदेव से कहा,
निकट सरोवर से जल लाना!
अदृश्य- रूप वाणी ने एक रोका ,
मांगा वह उत्तर अपने प्रश्नों का !

सुनी न बात , बड़े प्यासे थे,
सहदेव अंजुली भर जल पी गए!
निर्जीव हो वे वहीं गिर पड़े,
लौटा न तो युधिष्ठिर व्यग्र हुए!

भेजा नकुल को फिर देखने,
वह भी सहदेव- सा ही गिर पड़े!
अर्जुन और भीम भी वैसे ही गिरे ,
विकल युधिष्ठिर उन्हें ढूँढने निकले!

धर्मज ने यक्ष- वाणी को सुना,
उत्तर दिया फिर उन प्रश्नों का!
यक्ष -रूप - यम ने फिर किया,
जीवित उनके चारों ही भ्राता !

गुरु -दक्षिणा में सांदीपनि ने,
चाहा मृत पुत्र उनका जीवित हो!
बलभद्र कृष्ण ने जाकर यमपुर से,
लाकर उसे सौंप दी थी गुरु को !

इस युग में भी चमत्कार हुआ,
सूली पर चढ़े थे प्रभु ईसा!
पुनः प्रकट हो संशय दूर किया,
रोते बिलखते रहे उन शिष्यों का!

कितने महान वे सब ही थे,
मृत्यु को ललकारा था उनने!
विजय प्राप्त कर मृत्यु पर वे,
मृत्युंजय सब ही कहलाये !

शब्दार्थ –

जग= संसार
निराले =अनोखे, अद्‌भुत
काल = मत्यु, यमराज
उनने= उन्होंने
सती = पतिव्रता नारी
मात दी=पराजित किया, हराया
मृकण्डुसुत = मृकण्डु ऋषि के पुत्र यानी मार्कण्डेय
तत्क्षण= तुरंत, उसी पल
बाहुपाश = भुजाओं का घेरा , दोनों हाथों से मजबूती से पकड़ लेना
भग्न= टूटा हुआ , खंडित
रौद्र रूप = भयानक या क्रोधित रूप
चिरंजीव = अमर , दीर्घायु
व्यग्र= बेचैन, व्याकुल
विकल = दुखी , व्याकुल
धराशायी=जमीन पर गिरे हुए, मूर्छित
धर्मज = धर्मराज के पुत्र, युधिष्ठिर
यक्ष-रुप-यम = यक्ष के रूप में आये यमराज
भ्राता = भाई
बलभद्र = श्रीकृष्ण के भाई बलराम
यमपुर= यमलोक
संशय= संदेह, दुविधा
मृत्युंजय= मृत्यु पर विजय पानेवाला, भगवान शिव का एक नाम

—------

सप्तम सर्ग
आत्मबोध - महाभारत खंड

71.
वह अभिमन्यु है आज कहां?

तेरहवां दिन था वह युद्ध का,
गुरु द्रोणाचार्य ने ठान लिया !
दुर्योधन की करने पूरी इच्छा,
धर्मराज को बंदी बनाना चाहा !

द्रोण ने की चक्रव्यूह की रचना ,
भेद सकते जिसे कृष्ण -पार्थ ही !
त्रिगर्त नरेश सुशर्मा ने उन्हें ललकारा,
ले गया उन्हें कुरुक्षेत्र से दूर कहीं !

पांडवों को हताशा ने आ घेरा ,
कैसे हो युधिष्ठिर की अब रक्षा !
तोड़े कौन वह चक्रव्यूह का घेरा ,
कैसे हटे विपत्ति की यह घटा ?

युधिष्ठिर के निकट अभिमन्यु पहुंचा ,
' आज्ञा दें , तात ! ' नत हो वह कहा ।
' इस चक्रव्यूह को मैं भेदूंगा !
तनिक न करें आप सब चिंता ! '

कहा , ' तात ! मैं प्रवेश जानता ,
पर नहीं जानता हूं मैं लौटना !
मातृ गर्भ में जब मैं सुन रहा ,
मेरे पिता ने कहा बस इतना ! '

अश्रु नयन में तब भर आये ,
धीर धर्मराज विचलित मन हुये !
कहा,' पुत्र ! तुझे भेजूं मैं कैसे ,
अभी दूध के दाँत भी नहीं टूटे ! '

'क्या मुंह दिखाऊंगा मैं अर्जुन को,
कैसे कहूंगा , तुझे भेजा मैंने ही !
मेरे तुच्छ प्राण की रक्षा करने को,
व्याघ्र के मुख तुझे झोंका मैंने ही !'

"दुर्योधन कर ले मुझको बंदी ,
या मेरे प्राणों को ही वह हर ले !
पर तुझे भेज सकता मैं नहीं ,
सौभद्र ,तुम कुलदीपक हो मेरे !"

सुन तात के वचन ये प्रेम भरे ,
भावविभोर हुआ वीर सौभद्र भी ।
कहा," विचलित न हों ऐसे, तात मेरे!
विचारें आप केवल युद्ध धर्म ही !"

" मेरे पिता अर्जुन दूर से ही ,
आशीष देंगे वे हर्षित मन से !
चक्रव्यूह को भेदूंगा यदि नहीं,
मुंह दिखाऊंगा मैं उनको कैसे?"

धीर युधिष्ठिर क्षण भर ठिठके ,
युद्ध धर्म को तनिक वह परखे ।
कृष्ण पार्थ जो यह युद्ध कर रहे,
उस धर्मयुद्ध पर पानी कैसे फेरें?

धर्मराज बोलने को उद्धत हुये ,
दुख से कंठ रुद्ध हुआ उनका ।
बोले ,'अर्जुन-पुत्र! तुम अर्जुन जैसे,
वीरप्रवर हो ,मैं यह जानता !'

"पर कैसे दूं मैं तुझको आज्ञा ,
मन मेरा यह बैठा जा रहा !
हाय , आज कैसी है परीक्षा !
निंदनीय होगा कर्म यह मेरा !"

अभिमन्यु उनके पैरों में झुका ,
कहा ," तात ! मुझे शीघ्र दें आज्ञा !"
छूकर चरण आशीष जो मांगा ,
सजल नयन धर्मज ने मस्तक चूमा !

ले आशीष अभिमन्यु बढ़ चला,
भींगे थे नयन चारों पांडवों के !
भीमसेन भी आंसू न रोक सका,
भर आये नयन ,नकुल सहदेव के!

वीर अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुस गया ,
भीषण युद्ध किया कौरवों से उसने !
पीछे चली थी धर्मराज की सेना ,
द्वार पर रोका सिंधुपति जयद्रथ ने !

शौर्य अद्भुत था बालक अभिमन्यु का,
अगणित योद्धाओं को मारा उसने !
उस सिंहशावक को महारथियों ने घेरा,
उस अकेले पर वार किया मिलकर सबने !

एक अकेला शस्त्रहीन वह खड़ा,
रथचक्र ले शेर -सा गरजता रहा !
सात महारथियों से था वह घिरा ,
अधर्म युद्ध इससे और क्या होता ?

आचार्य द्रोण थे और कृपाचार्य भी,
थे कुटिल दुर्योधन और शकुनि भी !
नीच दुशासन और अश्वत्थामा भी,
था सुयोधनमित्र वह वीर कर्ण भी !

ऐसी मति उनकी मारी गई ,
देख निशस्त्र बालक उन्हें दया न आई!
कर्ण जानता यह अनुजपुत्र मेरा ही,
फिर भी मैत्री उसके आड़े आई !

सात महारथियों ने मिलकर वार किया ,
वीर बालक अभिमन्यु लड़ता ही रहा !
वीर कर्ण ने भी वार पीठ पर किया,
' हे तात !' कह वह धराशायी हुआ !

रोई थी तब यह वसुंधरा भी,
रक्तसिक्त अभिमन्यु था पड़ा !
भर आई आंखें तब कर्ण के भी,
"हाय विधाता!मैंने यह क्या किया ?"

हो रहे आज सब दुर्योधन जैसे ,
होकर हठी पिता पर हावी होते !
धृतराष्ट्र बन कर पिता वही करते,
निज पुत्र के वश में हो वे चलते !

वह अभिमन्यु है आज कहां ?
जिसने चक्रव्यूह को भेदा था !
सात महारथियों से निहत्था ,
जो एक अकेला ही जूझा था !

शब्दार्थ –

१) त्रिगर्त = महाभारत- कालीन एक जनपद / राज्य
२)नरेश = राजा
३) सुशर्मा = त्रिगर्त देशका राजा
४) पार्थ = अर्जुन
५) चक्रव्यूह = चक्र के आकार की व्यूह रचना
६) धर्मराज= युधिष्ठिर
७) रात= पिता, स्नेहपूर्वक बड़ों को संबोधन
८) सौभद्र = सुभद्रा का पुत्र,यानी अभिमन्यु
९) कुलदीप =कुल का दीपक , कुल का गौरव बढ़ाने वाला
१०) वीरप्रवर= श्रेष्ठ वीर
११) युद्धधर्म = युद्ध में पालन किया जानेवाला धर्म, कर्तव्य
१२) सजल नयन= आंसुओं से भरी आंखें
१३) धर्मज = धर्म का पुत्र , युधिष्ठिर
१४) सिंधुपति = सिंधु देश का राजा , यहां जयद्रथ
१५)षोडश= सोलह वर्षीय बालक
१६) महारथी= अत्यंत वीर (वीरों का वर्गीकरण)
१७) निशस्त्र= जिसके हाथ में कोई शस्त्र न हो
१८) धराशायी= भूमि पर गिरा हुआ
१९) रक्तसिक्त =खून से सना हुआ
२०) वसुंधरा = धरती
२१)मति = बुद्धि
२२) हठी = जिद्दी
२३) हावी " दूसरों पर प्रभाव डालनेवाला
२४) अनुज पुत्र = छोटे भाई का पुत्र
२५)आड़े आना = बाधा बनना

विशेष नोट - इस कविता के छठे बौद्ध में युधिष्ठिर अभिमन्यु से कहते हैं , " पुत्र तुझे मैं भेजूं कैसे , अभी दूध के दांत भी नहीं टूटे!" इन पंक्तियों को पढ़ते समय पाठकों के मन में यह बात खटक सकती है कि युद्ध के समय अभिमन्यु की आयु सोलह वर्ष की थी , फिर दूध के दांत न टूटने की बात विरोधाभास नहीं है ? यहां मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि वह तो युधिष्ठिर का बालक अभिमन्यु के प्रति विशेष अनुराग और प्रेम को दर्शाता है । यहां अभिमन्यु की आयु नहीं बल्कि एक पिता का पुत्र के प्रति अनुराग को परिलक्षित करता है! इसे उसी भाव में लेना चाहिए।

—------

72.
कुंती -कर्ण संवाद

सांध्य-अर्घ्य अर्पित करता हुआ,
जल में तेजस्वी राधेय था खड़ा !
व्याकुल खड़ी थी कुन्ती तट पर,
मन उसका था शोक भरा !

थी तड़प रही ममता उसकी,
छिपा रखी थी बरसों से जिसे!
कुंती माता आज यहाँ आई,
खोया अधिकार फिर पाने को!

संध्यावंदन कर कर्ण ने आँखें खोलीं,
सम्मुख अपने कुंती को उसने पाया!
नत मस्तक हो , अंजलि जोड़कर,
कौंतेय कर्ण उसे प्रणाम किया !

"हे देवि! कहो, किस काज यहाँ,
संध्याकाल पधारी इस निबिड़ वन में?
राधेय खड़ा है सम्मुख आपके,
आज्ञा कर्ण को क्या , कहो माते !"

"मत कहो स्वयं को राधेय, पुत्र !
कौन्तेय हो तुम , पांडव-प्रथम हो !
नहीं सूतपुत्र, तुम हो सूर्यपुत्र,
कुरुवंश के ज्येष्ठ, तुम पांडव-श्रेष्ठ हो!

मैं भरमाई थी लोक-लाज में,
तज बैठी मैं अपना ही प्राण!
तेरे साथ अनुज हैं तेरे पाँच,
तेरी छत्रछाया में रहेगी मेरी संतान!"

सुन वज्रपात-से मातृ-वचन,
कर्ण की आँखें छलक उठीं!
ममता से भीगी बातों पर,
स्वाभिमान की कमान खिंची!

बोला कर्ण—"तब कहाँ गई थी ममता,
जब रोता शिशु को छोड़ा तुमने?
गंगा की उन उत्तुंग लहरों में,
किस आस से छोड़ा था तुमने?

इस निर्दय समाज के डर से ही क्या, माते!
तूने पय-अमृत से वंचित किया मुझे?
परिचय छीन, कुल-गोत्रहीन कर,
अनाथ बना छोड़ दिया मुझे?

रंगभूमि में जब उपहास हुआ,
तब क्यों न हुंकार भरी तुमने?
सूतपुत्र कहकर जब सभा ने दुत्कारा,
क्यों सुध न मेरी ली तुमने?

अब महासमर के तट पर जब मैं खड़ा ,
तुम निज लाज बचाने आई हो?
अर्जुन के प्राणों की भिक्षा माँगने,
या पांडव-पक्ष बढ़ाने तुम आई हो?

जिस दुर्योधन ने मान दिया,
अंगराज कह पहचान दिया!
इस संकट की घड़ी में भला,
उसे छोड़ना न्याय कहलाएगा?

मित्रधर्म सर्वोपरि मेरा,
कुरुराज का ऋण मैं चुकाऊँगा।
सूर्यपुत्र हूँ, पीठ दिखाकर
अधम नहीं मैं कहलाऊँगा।

पर द्वार से मेरे खाली हाथ, माँ!
कोई याचक नहीं जाता!
आई हो तुम याचना लेकर,
पर माते, तुम राजमाता हो!

सुन ले माते! वचन कर्ण का,
कुन्ती के रहेंगे पांडव पाँच!
या अर्जुन या कर्ण रहेगा,
पांडव कहलाएँगे वही पाँच!

अर्जुन को छोड़ किसी पांडव पर
बाण यह मेरा नहीं छूटेगा!
रणभूमि में चाहे जो भी हो,
यह सत्य कभी न टूटेगा!

पाँच पुत्र तब भी होंगे तेरे,
यह जग ही उसका साक्षी रहेगा!
या तो अर्जुन जीवित रहेगा,
या कर्ण ही इस धरती पर रहेगा!"

सुन वीर-वचन कर्ण के,
कुन्ती का दिल दहल उठा।
कर्ण का या फिर अर्जुन का,
वध वह देख सकेगी क्या?

"पुत्र!" कह आर्त हो वह,
अंतिम बार पुकार उठी!
चूम मस्तक कर्ण का उसने,
अश्रुओं से भिगोने लगी!

कर्ण भी भीतर से विचलित था,
फिर भी धीर बना खड़ा रहा!
मन को स्थिर कर , हृदय थाम,
कुंती से तब कर्ण कहा-
"अंधकार हो चला है, माते!
अब लौट चलना है भला!
कर्ण को भी दें आज्ञा माते ,
कल समरभूमि में है जाना!"

मूक थी वाणी, तन साथ नहीं दे रहा,
कुंती का मन विषाद से भरा था !
भर आए नयनों से देख कर्ण को,
मन ही मन रोने लगी कुंती माता!

"हाय विधाता! खो दूँगी क्या मैं
अपने इस अनमोल रत्न को !
सजल नयनों से देखती हुई कर्ण को,
कुंती लौट चली निज शिविर को !

—------

73.
अगर कर्ण शापित नहीं होता!

अगर कर्ण शापित नहीं होता,
तो क्या महाभारत ऐसा होता!
कौन है धीर धनुर्धर ऐसा,
जो उसके सम्मुख टिक पाता !

अगर माता कुंती कन्या न होती,
जब तेजस्वी वह कर्ण जन्मा था।
तब क्या वह सुत को त्यागती?
क्या अर्जुन तब प्रतिद्वंदी होता?

अगर कर्ण त्यजित नहीं होता,
तो क्या वह सूतपुत्र कहलाता?
होता क्या वह दुर्योधन का सखा ,
पांडव- श्रेष्ठ नहीं कहलाता?

अगर कर्ण सूतपुत्र नहीं होता,
तो गुरु द्रोण का शिष्य न होता?
तब अर्जुन क्या उनका प्रिय शिष्य होता,
और श्रेष्ठ धनुर्धर कहलाता?

अगर कर्ण सूतपुत्र नहीं कहलाता,
तो परशुराम का शिष्य न होता ?
फिर वह न ही धनुर्विद्या भूलता ,
न ही अर्जुन उसका प्रतिद्वंदी होता!

अगर भार्गव का शाप न होता,
तो वह विद्या व्यर्थ होती भला?
रण में फिर अर्जुन क्या टिकता?
कर्ण का क्या वह वध कर पाता?

अगर इन्द्र भी उसे न छलता,
कवच औ' कुंडल नहीं छीनता।
तो क्या अर्जुन का शर बींधता,
सीना उस शूरवीर कर्ण का ?

विधि ने क्रूर हास्य था खेला,
निर्दोष कर्ण का अपमान हुआ!
पग पग पर उसको छला गया,
वंचित उसे पल- पल किया गया !

नहीं है कोई वीर कर्ण- सा,
नहीं है दानी उसके जैसा !
अगर कर्ण शापित नहीं होता,
तो महाभारत का अंत यह न होता!

—------

74.
प्रतिशोध की वह रात

प्रतिशोध की वह रात बहुत ही भीषण थी!
मन में उसके प्रतिशोध की ज्वाला धधकती रही!
शत्रुओं के खून का प्यासा वह पशुवत् हो रहा था!
विवेकशून्य हो स्वामिभक्ति का परिचय देने वह चला!

कुरुक्षेत्र के युद्ध का वह अठारहवां दिन था!
टूटी जंघा से मरणासन्न **दुर्योधन** पड़ा था!
देख मित्र की यह दुर्दशा, दुखित **अश्वत्थामा** हुआ,
पांडवों का वध आज करूंगा, भीषण वह प्रण किया!

रात्रि के समय तब घनघोर अंधकार में,
कृपाचार्य ,कृतवर्मा को संग ले **अश्वत्थामा** चल पड़ा!
निबिड़ शांति छाई हुई थी,पांडवों के शिविर में ,
निद्रा में मग्न सब वीर थे,नहीं भान था उन्हें वार का!

रक्षकों को मार उसने शिविर में प्रवेश किया ,
निद्रामग्न **धृष्टद्युम्न** का अधर्म से उसने वध किया!
शिखंडी ,युधामन्यु ,उत्तमौजा को भी मार दिया,
कालरूप बन पांडवों के शिविर में भीषण नरसंहार किया!

देखा उसने पांच योद्धा निद्रा में लीन थे!
पांडवों के पुत्र वे , पांडवों के सम ही थे!
समझ उन्हें ही पांडव ,सर अलग किया धड़ से,
भीषण अट्टहास किया,वह रक्तरंजित खड्ग ले !

पर वह तो बालक थे,पांडवों के पुत्र थे!
घोर पाप था कर दिया,वह ब्राह्मण **द्रोणपुत्र** ने!
क्रुद्ध **अर्जुन** ने चाहा, सर उसका उतार ले,
पांचाली के कहने पर छोड़ा ,शीश से मणि निकाल के!

व्यथित हो रोई **गांधारी**,**अश्वत्थामा** के कुकर्म से!
धृतराष्ट्र भी दुखित हुए,उसके इस पापकर्म से !
क्रुद्ध हो शाप दिया तब स्वयं **श्रीकृष्ण** ने !
तेरे इस घोर पाप का , मूल्य अवश्य तुम चुकाओगे !

कलियुग के अंत तक जीवित तुम भटकते रहो !
घाव यह तेरा कभी न सूखे ,तेरे पाप सताये तुझको!
चाह कर भी मृत्यु नहीं पाओगे तुम कभी, अहो!
पश्चाताप और प्रायश्चित के अग्नि में तुम सदा जलते रहो!

—------

75.
धर्मराज का स्वर्गारोहण

स्वर्गारोहण करने धर्मराज चले थे ,
संग द्रौपदी और चारों अनुजों को लिए।
सशरीर सभी स्वर्ग जाना चाहते थे ,
हिमालय से उत्तर की ओर वे बढ़ चले !

धर्मराज युधिष्ठिर को जाते जब देखा,
श्वान एक काला उनके संग चल पड़ा!
पांचाली को सँभाले चल रहे सब भ्राता,
सबसे पीछे चल रहा था, श्वान वह काला!

दुर्गम थी राह वह ,कठिनाईयों से भरी,
बढ़ते रहे पांडव दृश्य था वह अनोखा !
पहुंचे बदरिकाश्रम,आगे हिमालय था ,
हिमालय से आगे सुमेरु पर्वत उन्होंने देखा!

तभी लड़खड़ाई और गिर पड़ी पांचाली,
भीम व्यथित हुए , पूछे ज्येष्ठ भ्राता से-
"द्रुपदसुता याज्ञसेनी की स्थिति यह कैसी ?
अग्नि जैसी पवित्र ,उद्भव जिसका अग्निकुंड से!"

बोले धीर युधिष्ठिर ," सुनो, मेरे भ्राता!
पवित्र है पांचाली ,कृष्ण स्वयं जिसके सखा!
पर एक ही पाप से हुई उसकी यह दशा-
मन में था मोह उसके ,अर्जुन के लिये छिपा!"

कृष्णा को छोड़ वहीं ,चले पांचों भ्राता,
धर्मज के मन में उसके प्रति मोह न था!
कुछ ही दूर चले कि सहदेव गिर पड़ा ,
दुखित भीम पूछे,"भैया ऐसा क्यों हुआ ?"

बोले फिर धर्मनंदन,"सुनो मेरे भ्राता!
सहदेव है बड़ा प्यारा, भ्राता है हमारा!
पर गर्व था उसको अपनी विद्वता का,
इसी एक पाप से हुई उसकी यह दशा!"

फिर कुछ दूर चले ,चारों पांडव भ्राता,
धर्मज को छोड़ सबके मन में थी चिंता!
विधि ने माद्रीनंदन नकुल को भी छीना,
लड़खड़ाकर गिरा वह और निश्चेष्ट हो गया!

भीम सह न सका,दुख उसका उमड़ा ,
"भैया नकुल ने भी क्या कोई पाप किया?
माता माद्री का बेटा, है यह अति प्यारा,
नहीं जानता मैं इसने क्या पाप किया!"

बोले फिर युधिष्ठिर," सुनो मेरे भ्राता!
भ्राता नकुल कुछ पाप तो नहीं किया!
पर गर्व था उसे अपने अनुपम रूप का,
उसी कारण हुई है उसकी यह दुर्दशा!"

युधिष्ठिर आगे बढ़े, संग भीम -अर्जुन थे,
भीम चिंतित थे -यह कैसी कठिन परीक्षा!
आगे चलते गये कि अर्जुन भी गिर पड़ा,
निष्प्राण अर्जुन को देख कर भीम फिर रो पड़ा!

आर्त होकर उसने युधिष्ठिर से पूछा,
"यह क्या हो गया मेरे अर्जुन को,भैया?
श्रेष्ठ धनुर्धर ,केशवसखा की यह दशा?
बताओ भैया,क्या पाप इसने किया?"

धर्मराज सांत्वना देकर बोले तब भीम से,
"अर्जुन को गर्व था निज पराक्रम का!
शत्रुओं का नाश कर दूंगा एक दिन में -
कहता आया, पर क्या वह ऐसा कर पाया?"

समझ गया भीम, सबने कुछ न कुछ पाप किया,
चला कुछ दूर ही,फिर वह भी गिरने लगा!
गिरते हुए ही भीम ने युधिष्ठिर से पूछा,
"भैया, यह बताओ कि मैंने क्या पाप किया?"

बोले तब युधिष्ठिर ," सुनो मेरे भैया!
तुम बहुत खाते और बल दिखाते थे!
परिणाम है यह तेरे झूठे बल प्रदर्शन का,
जो आज तुझको धरती पर लोटना है पड़ा!"

पीछे छूट गये सब,युधिष्ठिर आगे बढ़ चले!
चल रहा था वह काला श्वान अब भी पीछे !
तभी देवराज इंद्र निज विमान ले आ पहुंचे,
कहे ,"चलो धीर! तुम्हें स्वर्ग ले जाने हम आये!"

धर्मज ने कहा ,"देव! यह श्वान भक्त है मेरा!
अनुमति दें आप ,इसे भी स्वर्ग मैं ले चलूंगा!"
बोले तब इंद्र ," धर्मनंदन! पूर्ण नहीं हो सकती तेरी यह इच्छा ,
श्वान यह स्वर्ग का अधिकारी नहीं हो सकता!"

युधिष्ठिर बोले - "तब फिर मैं स्वर्ग नहीं चलता!
साथ छोड़ गये सब ,यह श्वान ही मेरे साथ था !
कौन है यह जीव,यह तो मुझे नहीं पता,
पर वह तो पूरी राह मेरे ही साथ था !"

" उस मूक, स्वामिभक्त श्वान को न छोड़ूंगा,
उसके स्नेह और भक्ति का यूँ न मोल चुकाऊँगा!
रहेगा वह जहाँ ,मैं भी वहीं रह लूँगा ,
उसके बिना स्वर्ग मैं निश्चित नहीं जाऊंगा!"

कहकर वे धर्मराज ,पथ पर कदम बढ़ाये ,
"ठहरो!" सुन इंद्र के वचन उनके पग ठिठके !
"देखो , धर्मनंदन! तेरे उस श्वान को!"
कह उस श्वान की ओर दिखाया देवराज ने !

क्षण भर में श्वान ने रूप अपना छोड़ा,
उसकी जगह अब दिव्य पुरुष था खड़ा!
वह कोई अन्य नहीं ,स्वयं धर्मदेव थे ,
देख अपने पुत्र को वे मुदित मन हो रहे थे!

धर्मदेव श्वान- रूप छोड़ निज रूप में आए,
धर्मराज के धर्म को देख वे बहुत हरषाए -
"सुनो पुत्र! इस परीक्षा में भी तुम विजयी हुए,
जाओ,स्वर्ग में तेरे भाई -बंधु आतुर हो रहे!"

पर धर्मराज को यह बात पता न था !
परीक्षा उसके धर्म की अभी पूरी हुई नहीं!
एक और अंतिम परीक्षा राह देख रहा उसका,
वीर युधिष्ठिर विमान चढ़ चले अमरावती इंद्र की!

जाकर स्वर्ग में देखा धर्मनंदन ने वहाँ,
स्वर्णजटित सिंहासन पर दुर्योधन विराजमान था!
न ही द्रौपदी दिखी, न ही कोई भ्राता दिखा,
बोले वे देवताओं से ले चलो हमें वे हैं जहाँ !

बोले युधिष्ठिर,"मुझे नहीं उत्तम लोक की कामना,
रहूंगा वहाँ भ्राताओं संग द्रौपदी है जहाँ!"
"इस देवदूत संग जाइये" ,बोले तब इंद्र देवता,
"मिल जायेंगे भ्राता और द्रौपदी आपको वहाँ!"

चले धर्मराज देवदूत ले गया जहां,
मार्ग अंधकारमय ,दुर्गंध चहुँ ओर था!
लौह चंचु वाले गिद्ध और भयंकर काग वहां ,
मंडरा रहे शवों पर , जो बिखरे पड़े थे वहाँ!

असिपत्र नाम का घोर वह नरक था,
पूछे युधिष्ठिर ,"और कितना पथ है चलना?"
"थक गये तो वापस चलें ",देवदूत ने कहा,
कहे युधिष्ठिर, "अस्तु ,हमें वापस है चलना!"

तभी करुण क्रंदन युधिष्ठिर ने सुना,
" कुछ देर रुक जाओ !" शब्द आने लगे ।
" कौन हो तुम सब ?" धर्मज ने उनसे पूछा,
"हम हैं कर्ण, भीम ,अर्जुन ,नकुल, सहदेव और द्रौपदी!" कहा एक -एक ने!

" लौट जाओ तुम !" धर्मराज उस देव से कहा,
"जहाँ मेरे भ्राता और पांचाली,मुझे वहीं रहना!"
देवदूत जाकर इंद्रदेव से सब कुछ कहा,
इंद्र देवताओं संग आ पहुंचे तब वहाँ!

आते ही देवतागण , प्रकाश वहाँ छा गया ,
सुगंधित निर्मल वायु बहने लगी वहां!
कहे इंद्र,"छल से तुमने द्रोण को पुत्रशोक दिया,
अतएव तुझको भी छल से ही नर्क का दर्शन हुआ!"

" अब चलो युधिष्ठिर स्वर्ग , तेरे भाई सब हैं वहाँ,
है वहाँ द्रौपदी और अन्य वीर भी वहाँ!
हे धर्मनंदन! यह है पवित्र देवगंगा,
करो स्नान इसमें दिव्य देह धारण जो तुझे करना!"

इंद्र की बात सुन धर्मराज ने ,देवगंगा में स्नान किया,
मानव देह त्याग , दिव्य देह तब उन्होंने धरा!
महर्षिगण अनेक स्तुति करते युधिष्ठिर को ले गये वहाँ,
भीम ,अर्जुन ,नकुल ,सहदेव ,द्रौपदी,और कर्ण थे जहाँ!

धर्मराज ने किया दर्शन वहां प्रभु कृष्ण का,
भाई अर्जुन सेवा कर रहे थे उनका वहाँ !
स्वागत किया कृष्ण और अर्जुन ने धर्मराज का,
पुलकित मन युधिष्ठिर ने देखा सब बंधुजनों को वहाँ!

निजरूप धर बैठे भीम , संग वायुदेव के,
सूर्यसम रूप धर कर्ण भी वहां बैठे थे!
नकुल,सहदेव अश्विनी कुमारों के संग थे,
'श्री' की अंश द्रौपदी , बैठी संग 'श्री' के !

उन वीरों की गाथा बताया इंद्रदेव ने,
कुरुक्षेत्र में प्राण निछावर किया था जिनने!
नतमस्तक हुआ युधिष्ठिर कर्ण के चरणों में,
भ्राता संबंधियों को देख हर्ष हुआ उनके मन में!

—------

76.
स्वर्गलोक में युधिष्ठिर का स्वागत

" बधाई हो ,युधिष्ठिर !
तेरी धर्मशीलता की जय हो!
कहकर श्रीकृष्ण ने किया स्वागत ,
दिव्यधाम में संग ले अर्जुन को!

कपट द्यूत था अधम शकुनि का ,
तुमने धर्म का साथ न छोड़ा !
वनवास और अज्ञातवास का,
तेरह वर्षों का कष्ट तुमने झेला!

सरवर के तट जब पूछा यक्ष ने ,
जीवित करूँ मैं तेरे किस अनुज को?
धर्मनंदन,क्षण में ही कहा तुमने ,
माद्रीनंदन नकुल जीवित हो!

धर्मज,तूने नहीं चाहा,
भीम या अर्जुन जीवित हो !
सोचा,एक कौंतेय तो जीवित है ,
माद्री का भी एक पुत्र जीवित हो!

तेरी धर्मशीलता यहीं, होती नहीं है पूरी,
सोचा किंचित अन्याय का भागी न हों माता माद्री!
ज्येष्ठ कौंतेय ठहरे तुम जो, तुमने सोचा ,
ज्येष्ठ माद्रेय नकुल भी जीवित हो!

क्षणभर तेरे धर्म को परखा था उन्होंने!
तेरा उत्तर सुनकर चौंके स्वयं धर्मराज भी !
स्वयं धर्म- सा न्याय देख वे अत्यंत हरषाए,
किया जीवित नकुल सह अन्य तीनों भ्राताओं को भी!

धर्मनंदन , हे ,धर्मराज ! तुझको तो,
मैं भी सत्य से न डिगा सका !
रण से हटाने गुरु द्रोण को,
'अश्वत्थामा हतः' तुझसे कहलवाना था!

पर मुझे भान न था तेरे उस धर्म का,
इस अर्धसत्य को भी तुमसे कहलवाना कठिन था!
तुमने न तो मेरी बात टाली ,न ही की मेरी अवज्ञा,
'नरो वा कुंजरो वा ' कह तुमने अर्धसत्य को सत्य कर दिखाया!

जब स्वर्गारोहण को तुम चले,
द्रौपदी और अनुज तेरे राह में ही छूटे!
साथ ना छोड़ा वह श्वान जो था संग तेरे,
उसके बिना वह विमान और स्वर्ग तुम ठुकराए!

वह श्वान कोई श्वान नहीं, था वह तेरा तात ही!
धर्म की अंतिम परीक्षा लेने आये स्वयं धर्मराज ही!
धर्म तेरा देख गदगद हुए धर्म मन में ही,
श्वान रूप तज निज रूप में प्रकट ,ले चले निज संग ही!

आओ, धीर धर्मराज,देखो!
भीष्म, द्रोण, कर्ण संग सब भ्राता हैं।
माता-पिता ,सुहृदगण सब ही हैं,
प्रसन्नचित्त खड़े तेरा अभिनंदन कर रहे हैं! "

ऐसे मधुर आत्मीय वचन सुन **कृष्ण** के ,
अति प्रसन्न और भावुक **युधिष्ठिर** तब हुए !
कर वंदना **श्रीकृष्ण** की , विनम्र हो **युधिष्ठिर** ने,
कहा,"**हे केशव ! तेरा सदा साथ रहे** !"

(**टिप्पणी -** महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व के प्रसंग पर आधारित यह रचना कवि की भावुक कल्पना के रंग में रंगे श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के संवाद के साथ प्रस्तुत की गई है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर के धर्मशीलता का बखान कराना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है।)

—------